



SHRI SHRI HINDU LITERARY

MAINI TAL

पुस्तक प्रशिक्षण पुस्तकालय  
नर्मदापुर

Class No. 891.38

Vol. No. Y.16.B

No. 3638





## भेड़ और पशुपति

हिन्दी के सुपरिचित कथाकार श्री यमुनादास वैष्णव 'बशीर' का यह तीसरा मौलिक कहानी-संग्रह है। इसमें मार्मिक जीवन से सम्बद्ध सात ऐसी कम्बो कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम छाँवकी दर्शनीय है।

विगत सशायक में हमारी सामाजिक तथा पारिवारिक व्यवस्था को जो गहरी छेद पहुँची, उसकी मानसिक पुच्छगुमि पर ही इन कहानियों का निर्माण किया गया है।

कहानियों का चित्रण और कथानक इतना सजीव और सरस है कि किसी भी कला-प्रेमी को यह संग्रह पृथक् कर देगा। लेखक का अनुभव और निरीक्षण इतना गहरा है कि पाठक शनैः शनैः उसकी भाव-लहरियों पर अपने लगता है।

संगत चित्रण और सिद्ध मनोरंजन से ओतप्रोत यह कहानी-संग्रह हिन्दी के सभी पाठकों का समान रूप से मनोरंजन करेगा।



# भेड़ और मनुष्य

[ मौलिक कहानी-संग्रह ]

---

कथाकार  
यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

---

प्रकाशक  
इंक्विअर प्रेस ( पब्लिकेशंस ) लिमिटेड, इलाहाबाद  
१९५६

मूल्य १।।।)

शुद्धक  
नरेन्द्र प्रिन्टिङ्ग वर्क्स  
इलाहाबाद

**'माजकल' के भूतपूर्व व 'सारिका'**  
**के वर्तमान सम्पादक श्री सन्धुप्त**  
**विद्यालंकार जी को सावर**



**हमारे अग्र्य प्रकाशित**

**अन्न जी के उपन्यास**

**(१) सावित्री**

**(२) एक कमरे की कहानी**

## प्रकाशकीय

नवरत्न प्रकाशन का आधार एक दिन अचानक ही राजस्थान के यशस्वी साहित्यकार श्री यादवचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के कथन पर बन गया। श्री चन्द्र ने हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करके राजस्थान का मान बढ़ाया है और उनकी तैलगु, गुजराती, मराठी, सिन्धी तथा उर्दू में अनुवादित प्रकाशित कृतियों ने राष्ट्रभाषा का मस्तक गौरवान्वित किया है।

हमारी ओर से उनकी अधिक से अधिक पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना रहेगी और अन्य प्रकाशकों से छपी उनकी पुस्तकें भी आप यहाँ से सहजता से प्राप्त कर सकेंगे।

इस प्रकाशन के अवसर पर हम चन्द्र जी के बीकानेरद्वारा आत्मीयजनों एवं चिन्तक माजी (दिल्ली) क्रांति (बीकानेर) के भी आभारी हैं। क्रांति जी ने आचरणों के मूलाधार रहे और माजी जी ने उनमें फिनिशिंग टच देकर रंग भरे।

एक बार मैं अपने व्यक्तिगत रूप से उन समग्र राजस्थान दारी तथा प्रवासी लोगों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने चन्द्र जी की पुस्तकें अग्रिम खरीदकर मुझे नल दिया।

क्रांतिदेवी 'भद्राभाय',  
प्रबंधिका

## अनुक्रम

१. कथा परिकथा	६
२. पत्थर में पानी	९०
३. मैं मर गई हूँ	३०
४. मौन का विद्रोह	४२
५. एक सीमा	५२
६. सनसोहिनी	६४
७. मिर्जे पर पचरायी हृष्टि	८०
८. एक भीमार और वो झूटे विल	९२
९. झूटे हुए इन्सान	९९
१०. एक इन्सान की मौत : एक इन्सान का जन्म	१०९
११. योमली	११३
१२. मिस प्रभु और उनका कोड़ा	१३३
१३. गैड हासस '	१४७
१४. सस्मीर का झुसरा पहलू	१५७
१५. एक मुस्कान एक बिम्बणी	१७२
१६. कोई सम्बन्ध नहीं	१७६

## मैं इतना ही कहूँगा

प्रस्तुत कहानी संग्रह मेरा चौथा कहानी संग्रह है। इसमें मेरी सभी विभागों की लिखी कहानियाँ संग्रहीत हैं। मैं नयी-पुरानी कहानी की विवेचना में न खलक कर यह कहना चाहूँगा कि मैं लेखन का उद्देश्य केवल कोरा मनोविश्लेषण एवं क्षण की अनुभूति को नहीं मानता। लेखक की सार्थकता अभी सिद्ध होती है जब वह किसी उद्देश्य विशेष से लिखा जाय।

इसके प्रकाशन पर मैं मवरत्न प्रकाशन के सहयोगियों का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मेरे विचारों को मूर्त दिया। आपकी सम्मति की प्रतीक्षा रहेगी।

साले की होली }  
बीकानेर

यादवेंद्र शर्मा 'सम्र'

अगर तुम्हारा स्तर वही है जो  
 जीवन का है, अगर तुम्हारी कल्पना  
 ऐसे नमूनों की रचना नहीं कर सकती  
 जो जीवन में मौजूद न रहते हुए  
 भी उसे सुधारने के लिए आवश्यक  
 है तब तुम्हारा कर्तित्व किस मर्ज  
 की दवा है और तुम्हारे धर्म की क्या  
 शायकता है ?

—गोर्की

(एक पाठक से)

## कथा-परिकथा

क्या कहे सम्बोधन ? एक अपरिचित को सम्बोधन भी जल्दी ने नहीं किया जा सकता है, लेकिन तीन पत्रों को भेज कर मैं कुछ-कुछ ऐसा समझने लगा हूँ कि तुम मुझ और मेरी हरकतों से नाराज नहीं हो । तुम्हें मेरी बातों का समर्थन है ।

सब, जब से तुम इस मकान में आई हो, मैं निरन्तर इस खिड़की की राह तुम्हारे भीगे सौन्दर्य के माधुर्य को दृष्टि द्वारा देखा-देखा करता रहा हूँ और मुझे लगता है कि वर्षों की प्रतीक्षा के बाद मैं जिस "मीतस" की खोज करता रहा हूँ, वह स्वतः ही मेरे पास आ गई है । इस कल्पना-भाव से कि तुम मेरे पास हो, मेरे भारत की समस्त धनियाँ अपने समस्वर में गा उठती हैं—तुम्हीं मेरी कविता की सजीव प्रेरणा हो, मेरी आराध्य और पथ की पाथेय हो ।" तुम्हें एक बार फिर याद दिला रहा हूँ कि मैंने तुम्हें तीन पत्र दिए हैं । तुमने वे तीनों पत्र पाकर किसी तरह की अपने और मेरे घर वालों से बिका-पस नहीं की, किसी तरह का विरोध-अवरोध भी नहीं किया तब मैंने समझा कि तुम भी मुझे उत्तमा ही चाहती हो, जितना मैं तुम्हें चाहता हूँ क्योंकि तुम्हारा मन ही मेरे प्यार की स्वीकृति है ।

तुम्हारा नाम क्या है, मैं नहीं जानती। किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है, मेरी कल्पना का कहना है कि तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा नाम 'गुलाब' से कम क्या रखा होगा। तुम्हें पाकर हर युवक अपने को धन्य समझेगा। तुम मुझे अपनी ओर से स्वीकृत लिख दो। मैं समाज और संसार से दूरकर लेकर भी तुम्हें प्राप्त करूँगा।

एक बात और पूछना चाहता हूँ—तुम मुझे सदा आनंद और बुझी-बुझी नजर से क्यों देखती हो? तुम्हारे रसीले अधरों पर सूखी मुस्कान क्यों रहती है? कभी-कभी मैं इन सब बातों को लेकर बड़ा परेशान हो जाता हूँ। तुम्हारे पास घाने तक की सोच लेता हूँ लेकिन अपरिचित पड़ोसी समझकर मेरा साहस टूट जाता है। फिर तुम लोग नये हो। किसी से बोझते तक भी नहीं हो। तुम्हारे घरवालों का मन मुझमें भय पैदा कर रहा है, लेकिन इस पत्र का उत्तर नहीं भेजा तो याद रखना मैं जहर खाकर आत्म-हत्या कर लूँगा। खोब लूँगा कि मैं किसी के शायक नहीं हूँ। मैं अभागा हूँ। मैं तुम्हारे पत्र का पूरे चौबीस घंटे इंतजार करूँगा। इस पर भी उत्तर नहीं भेजा और तुमने कोई गड़बड़ी की तो मेरी लाच तुम्हारी इस लिपिकी के नीचे मिलेगी, मेरी मौत का सारा पाप, सारी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी। वस,

तुम्हारे पत्र का प्यासा

—नरोत्तम उषा "कवि कमल"

कवि कमल को इस उत्तेजना व धमकी से भरे पत्र के उत्तर की आशा नहीं थी। वह मुबह-मुबह ही अपने बरामदे में एक कापी और पेन्सिल लेकर बैठ गया। कभी आकाश की ओर देखता, कभी जमीन की ओर और कभी बरामदे की निर्जीव दीवारों की ओर। कभी-कभी कुछ लिखने का उपक्रम भी करता भागों अपनी जेबों की प्रतीक्षा में वह कोई प्रतीक्षा गीत लिख रहा हो।

जैसे ही बारह बजे जैसे ही उसकी नई पड़ोसित उसके सम्मुख उभास आकर बैठ गई। आज उसने उसकी ओर देखा भी नहीं। कवि महाराज

का दिल धक से रह गया। उसने सोचा कि आज इसने अवश्य उसके पत्रों को अपने बाप को बता दिया है। इस विचारमात्र से उसके जलाट पर पसीना छूट गया। वह उद्विग्न हो गया। उसने भट से नीचे आंगन में जाकर देखा—उसका बाप बहियों में उलझा हुआ था। वह चुपचाप आकर बैठ गया। उसने सोचा कि अगर वह उसके पिता को कह भी देगी तो उसका क्या भविष्य होगा? वह अपने पिता को साफ-साफ कह देगा कि वह उससे विवाह करेगा ही, उसके बिना नहीं रह सकता, अगर उसकी शादी नहीं हुई तो वह सचमुच आत्म-हत्या कर लेगा। उसके नेहरे पर किल्ली प्रेमी की तरह कृत्रिम हड़ता आई और वह थकड़कर गुलाब को देखने लगा। वह अत्यन्त आवावेश और उत्तेजना में था।

तभी एक कामज गोलाकार से आकर उसके बरामदे में पड़ा। उसने झपक कर उसे उठाया। मल की बाछे निकल गईं। शरीर में जल भा गई। उसने पछा—

कमलजी,

मैं आपका नाम जानती हूँ। कैसे जानती हूँ, यह नहीं बता पाऊँगी।... मैं आपकी धमकी से डर गई हूँ। मुझे लगा कि आप सचमुच आत्म-हत्या कर लेंगे और आपकी शास मेरी शिक्षा के पीछे पड़ी मिलेगी, इस बुष्कल्पना मात्र से मेरा खून बरफ की तरह जमने लगा और मैंने आपके पत्रों का उत्तर देना निश्चय किया।

मेरा यह पत्र आपकी मेरे बारे में सही जानकारी देगा और मैं समझती हूँ कि आप उसके बाद अपना इरादा बदल लेंगे।... मैं बहुत सभारी हूँ, इसलिए मेरे बाप ने मेरा नाम 'मिता' रखा है। बचपन में मैं अपनी माँ को जान गई ऐसा सभी कहते हैं। मेरी बालूनी मौसी का कहना है कि मेरे शरण जहाँ भी पड़ते हैं, वहाँ अविष्ट अवस्था होता है, कहीं आपका यह "परिज्ञात" सुगन्ध की जगह धमारों की जनन न फैला दे, यह विचारणीय प्रश्न है। अस्तु।

ये आपको कुछ बातें, बताना चाहती हूँ। पहली बात यह कि इससे



कस्से मे मेरे लिए उचित घर नहीं मिला, तब मेरे पिताजी मुझे यहाँ ले आए। यहाँ मेरे लायक कोई न कोई लड़का मिल ही जाएगा ? यहाँ का एक पड़ोसी हमारे पड़ोसी मे एकदम अपरिचित है। उन्हें किसी की कोई चिंता नहीं। आज की ही बात है—सुबह-सुबह घर की मासकिन के पास हवेली की नौकरानी दमो आई थी। दमो को उसके बाप ने बड़ी निर्वंशता से पीटा था। उसके भग-भग पर लकड़ियों के दाग चमक रहे थे। लेकिन हम भोगो को डम बटना का जरा भी पता नहीं लगा। मैं उसके हाथों को देखकर कांप उठी। मेरा मन कहणा से भर आया। लेकिन पड़ोसियों की यह गहरी व्यस्तता मेरे लिए बहुत उपयोगी सिख होगा, क्योंकि मुझे जैसी प्रभागी लड़की को सभी यहाँ पर धर मिल सकेगा और मेरे बाप के सिर की चिंता ज़रम हो जायगी।\*\*\*पर आपके पत्रों ने एक नई समस्या को पैदा कर दिया है। मैंने आपके पहले पत्रों को एक कमि का प्रलाप ही समझा, पर आपकी सरने की धमकी ने मुझे निश्चित कर दिया और मुझे आपको पत्रोत्तर देने के लिए बाध्य होना पड़ा। क्योंकि ऐसी जल्दी से बटने वाली घटनाएँ या तो फिल्मों में ही होती हैं या सस्ते उपन्यासों में ही, पर आपको देखकर मुझे कुछ नई अनुभूति हुई है कि ऐसी घटनाओं में सत्य अंश होता है। राय, अगर मैं आपको पा जाऊँ तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगी। मैं कस से बहुत खुश हूँ। मुझे भी घायल पसंद हैं। दोनों की पसंद का परिणाम क्या होगा, यह हमें पहले ही जान लेना चाहिये क्योंकि समाज बड़ा निर्दयी होता है। समाज हमारी ओर धौंलें उठाए, उँगनी दिखाये इसके पहले ही आपको साहस करके अपने पिताजी से हमारे विवाह के बारे में बात-चीत पक्की कर लेनी चाहिये। मैं आपको एक बात और कहती हूँ कि मेरा बाप इस रिस्ते के लिए कभी ना नहीं करेगा।

अब मैं आपको अपने बारे में कुछ कहना चाहती हूँ। मैं तेज बुद्धि की एक साधारण पढ़ी लिखी लड़की हूँ। अंग्रेजी में मैं केवल सी एच आई एन टी ए” ही लिखना जानती हूँ। हाँ, घर के प्रत्येक काम में आप

मुझे बी० ए० और एम० ए० तक की उपाधियाँ बिना किसी हिचकिचा-हट से दे सकते हैं। मुझमें एक और विशेषता है वह आपको आम लड़कियों में नहीं मिलेगी, वह है घर का काम के अनुसार बजट बनाना। उस बजट में अल्पबजट योजना भी शामिल है। आप कवि हैं और मैंने सुना है कि कवियों को शक-वक करने की बहुत आवस्य होती है। वे बात-बात में अपनी साधारणता उक्तियों कहते रहते हैं जो मुझे कतई पसंद नहीं है। मुझे चंभीर सावमी पण्डे लगते हैं बकवादी और बातूनी नहीं। मैं बोलना चाहती हूँ नहीं। क्या आप ऐसी कुछ लड़की को अपने सपनों की रानी बनाएँगे ?

देखिये जब मुझे दोपहर तक मिल ही जाना चाहिये।

चिंता—

×

×

×

कमल ने उसी समय पत्र का उत्तर लिख दिया।

मेरी प्यारी चिंता।

तुम्हारा पत्र पाकर मेरे मन मंदिर के मुझे हुए सहस्र द्वीप जल उठे। मुझे ऐसा लगा कि मेरा मन जब प्रसन्न सहरों पर अठखेलियाँ कर रहा है—जो क्षण से प्रणय-स्पर्श करते के लिए आकुल रहती हैं। मैं धारम-हत्या का विचार भी अब अपने मन में नहीं लाऊँगा। कौन ऐसा नवनील इन्सान होगा जो तुम्हारा प्रणय पाकर मरना चाहेगा ? चिंता मैंने तुम्हारा नाम गलती से गुलाब रख दिया है, अब अपनी भूल सुधार करता हूँ। तुम तो बहार ही, बीराने की बहार क्योंकि तुमने मेरे नीरस जीवन में बहार ला दी है। मेरे अरमानों में उस आन को जन्म दे दिया है जिस आन से विश्व के फूल खिलते हैं।

मैं अपने बाप से आज ही अपने विवाह के बारे में कहूँगा। उन्हें मेरा माहुरा भालना ही पड़ेगा। उन्हें नहीं मासूम कि मैं अपने बाप का इकलौता बेटा हूँ और मेरी माँ का भी देहान्त हो चुका है, ऐसी स्थिति में वे मेरी बात दाक नहीं सकते।

मुझे पढ़ी लिखी सबकी की जरूरत ही नहीं है। प्रायः मेरे जैसे हृदय के युवक के लिए बहुत पढ़ी लिखी सबकी एक समस्या और निरर्थक बन कर रह जाती है क्योंकि प्राण की सिद्धित सबकियों में अज्ञा और शक्ति की जगह तर्क और विचार की शक्ति अधिक होती है। तथा वे पतियों के कामों में आमिया निकाल कर यह बसाना चाहती है कि हम विद्वान हैं, हम आप से हार नहीं जा सकती, वगैरह वगैरह। यह होड़ भविष्य में विषाक्त जातावरण की सर्जना करती है और फिर सलाक तक की नीबत आती है। मैं तो इसे सिद्धान्त रूप स्वीकार करता हूँ कि कम पढ़ी लिखी परमी पति के लिए बरदान सिद्ध होती है।

और तुम्हारा निरन्तर भौन मेरे लिए ब्रह्म बरदान ही समझो। तुम्हें यह कहते हुए मुझे संकोच हो रहा है (संकोच का कारण अपने मूल अपनी सारी) कि मैं एक विशिष्ट गीतकार हूँ, हिन्दी में मेरा काशेजो में शीर्ष स्थान रहता है। मैं गीतों की गेयता और मौलिकता पर विशेष ध्यान देता हूँ। और यह सब तभी संभव है जब मैं बंटों हूँ चित्तन-मनन के सागर में गोते लगाता रहूँ। तुम शायद नहीं जानती, इस जाली समरिया में बड़े-बड़े आलोचकों द्वारा प्रशंसा पत्र पा जाना भी एक सन-सनी क्षेत्र चटना के बराबर की बात है। "पर मेरी बहार, यह सब मेरी साधना, मेरे चित्तन मनन के कारण ही है और चित्तन मनन बिना एकांत एकाग्रता के संभव नहीं। तथा एक गृहस्थ के लिए यह तभी संभव हो सकते हैं जब उसकी परमी बातूनी न हो। सब मेरी बहार, तुम मेरे मनो-कूल निकलती जा रही हो। अगर सारी दुनिया ही हमारा विरोध करेगी तो भी मैं तुम्हें प्राप्त करूँगा।

X

X

X

कविजी,

आपका पत्र मिला। आपने जिस आत्मीयता और दृढ़ता का परिचय दिया है उससे मुझे बस और सम्भव दोनों मिल रहे हैं। मुझे पहले ऐसा अहसास होता था कि मुझे कभी भी अपने लिए एक प्रणय

पति नहीं मिलेगा और मेरे बाप की यह चिंता सदा उसके सिर पर सवार रहेगी, और एक दिन विवश होकर वह इस मभागी को किसी बूढ़े, काले कष्टों और दीन-हीन के गले बाँध कर सुख की साँस लेगा और मैं एक जानवर से अच्छा जीवन नहीं बिता पाऊँगी। पर अब मेरे मन के विस्वास बदल रहे हैं। मैं मभागी से मुभागी बन जाऊँगी। मुझे एक अच्छा घर सुन्दर पति मिल जाएगा।

अब मैं आपसे एक आखिरी सवाल पूछना चाहती हूँ। क्या आप धार्मिक सौन्दर्य को अधिक चाहते हैं या आत्मा की? मान लीजिए कम मुझे अमानक चेकक निकल आये और मैं बदसूरत हो जाऊँ। मेरा यह गोरा रंग, सुडौल-कपोल गहरे दागों से भर जायें या मुझे कोई ऐसी भीमारी लग जाय जिससे मेरा उफनता हुआ धौवन बर्बो से दण और मुझिया की तरह शांत व निर्जिव हो जाय, तो भी क्या आप मुझे इतना ही उत्तेजनापूर्ण प्यार करेंगे? मुझे इस सवाल का जवाब तुरन्त दीजिए।

—बिता—

×

×

प्रिय बहार,

तुम्हारा सवाल काफी विचारपूर्ण है। आदमी के प्रेम के असली नकली रूप को प्रगट करने वाला है। आत्मिक और कायिक प्रेम में, मैं तो आत्मिक प्यार को ही सर्वोपरि मानता हूँ। इस प्रेम में स्वाभिमत्त्व और त्याग की भावना रहती है। वासना से परे इस प्यार में वैदिक मिलन की प्रेरणा का वास रहता है। प्राणी का प्यार इस पवित्र पथ पर अग्रसर होकर अग्ररत्न के साथ-साथ प्रेमी-प्रेमिका को भौतिक भावनाओं से उत्तर उठाकर उनमें देवत्व भरता है। वहाँ इस भावना से प्रेरित प्यार प्रगट होता है, वहाँ रूप-सौन्दर्य का महत्व शून्य के बराबर ही जाता है। मैं तुम्हें 'चाहता' हूँ तो हूँ ही पर इससे भी अधिक चाहूँगा तुम्हारी आत्मा को। अब मेरी अधिक परीक्षा व लो। मैं अब यह वाक्य

चुका हूँ—प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है। बस अब मैं अधिक देर तक इस गली का फासना नहीं सह सकता, तुम बोसती क्यों नहीं, एक बार तो पुकारो—मेरे कमल—

तुम्हारे सपनों का राजा  
कमल कवि

...

...

...

कमलजी,

पत्र मिला, उत्तर दो दिन के बाद दे रही हूँ। यह रिश्ता हो, इसके पहले मैं आपको एक कटु सत्य से परिचित कराना चाहती हूँ। आप जैसे प्रसिद्ध गीतकार चितन-मनमकारी आत्मिक-सौन्दर्य प्रेमी को मुझ जैसी नाकूब लड़की ज्ञान-दान दे, यह सोचा तो नहीं देता, पर आप के भावों की आसुमियत पर मुझे रहम आ रहा है। मैं चाहती हूँ कि हमारा यह आत्मिक प्यार सच्चाई से और मुखर हो तथा उसे बाद सूरज की उम्र जगे। गलतफहमी, छल-कपट और किसी रहस्य का रहना प्यार के उम्र को कम कर देता है और शेष जीवन में जहर और दुःखा भर देता है। मैं आप से ऐसी भाषा रखती हूँ कि यह कटु सत्य आपके हृदय प्यार में कमी नहीं आने देगा और नहीं आप अपने भावकों से हटेंगे।

मुझे अब पूरा विश्वास हो गया है कि मैं और आप विवाह के गठ-बंधन में बँध ही जाएँगे। इस मधुर कल्पना में मैं डूबी जा रही हूँ। भविष्य के सुन्दर सुख सपने मेरे समक्ष खड़े हैं। प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि मेरे ने सपने साकार हो। हाँ, मैं आपको एक गंभीर रहस्य से परिचित कराने की बात कह रही हूँ क्योंकि इस रहस्य के उद्घाटन में सहयोग दे रहे हैं आपके दुःखद आशीर्वाद विचार और आपका बड़ निश्चय।

यह सही है कि मेरा ज्ञान आपके चितन मनन में ऐसा चिर सहयोग देगा कि आपकी कमियाँ एक दिन विश्व-आपी स्वाति अजित कर

लेगी। मैं आपसे जीवन भर नहीं बोलूंगी। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि मैं इसी बरामदे में मौन बैठी रहती हूँ। क्यों? देखिए आप अपने वायदों से न विग जाइयेगा? वस्तुतः मैं जन्म से यूगी हूँ। मैं एक शब्द भी नहीं बोल सकती। अरे हाँ मैं बहरी भी हूँ। सकेत और होठों की गति से मैं आपकी बात सुरन्त ससक्त आऊँगी, यह मेरे अग्र्यास की बात है। मैं यहाँ आई हूँ या मुझे लाया गया है, वह भी सिर्फ इसलिये कि मेरा यहाँ विवाह इस रहस्य को छुपा कर किसी से कर दिया जाय अथवा किसी को रुपये देकर मुझे बाँक गाय की तरह घर से निकाल दिया जाय, पर आपके आत्मिक प्यार की बात सुनकर मैं इन सभी भयों में मुक्त हूँ और मुझे विश्वास है कि आप शीघ्र ही अपने पिताजी को पूछ कर या समाज में हँकलाव करके मुझे प्राप्त करेंगे? क्योंकि कवि लोग जन्मजात क्रान्तिकारी होते हैं।

मैं आपको एक बार और विश्वास दिला रही हूँ कि आपकी यह तूंगी और बहरी प्रेमिका संपूर्ण मारीत्व व सतीत्व के साथ आपकी उन्न भर सेवा करेगी।

-~विदा-

×

×

×

इस पत्र के पाते ही कवि कमल ने बरामदे में बैठना बन्द कर दिया। और तो और, वह बंद विनों के लिए कवि सम्मेलन का बहाना बनाकर बाहर चला गया। वह बार-बार ईश्वर की कोस रहा था उसने इसकी कल्पना लहकी को ऐसा अभिलाप क्यों दिया। वह सोचने लगा कि वह ऐसी युवती को कभी ग्रहण नहीं कर सकता जो भूगी और बहरी है। अब वह वापस लौटेगा तब तक यह खनी भी जावेगी।

और पन्द्रह दिनों के बाद जब वह वापस लौटा सब सामने बर खाली था। हाँ, तोरण द्वार पर ऐसे निम्न अवस्थ मीसूद थे जिससे इस बात का सहजता से पता लग जाता था कि इस घर में विवाह हुआ है। यह सब देखकर उसके मन को अत्यन्त संतोष हुआ।

v

x

x

कवि कमल अपने कमरे में गया। पत्र पढ़ने लगा। उसमें एक कुंकम पत्रिका भी थी। उसने पहले नीचे का पता पढ़ा। सामने वाली चिता की ह्रीं कुंकम पत्रिका थी। लिखा था—वर्षान शास्त्र के प्रकांड विद्याल प्रोफेसर दयाशंकर की सुपुत्री कुमारी गरिमा जी० ए० का विवाह स्थानीय प्रोफेसर धनुनाथ के मपुत्र श्री विश्वनाथ से दिनांक ५-५-५६ को सम्पन्न होने जा रहा है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस शुभ काम में मपरिवार पधार कर कृतार्थ करें—

कमल को चक्कर मार गया। कुछ देर तक वह खुल की तरफ बैठा रहा। अन्त में वह उठा और अपने पिता के पास गया। पिता से उसने पूछा, “क्या वह लड़की गंगी और बहरी थी?”

“कौन सी?”

“जिसका सामने वाले घर में विवाह हुआ था?”

“पता नहीं। मैंने उसे बोलते कभी नहीं देखा और कुछ वै लोग किसी से बातचीत भी नहीं करते थे। पिता ने उस पर नजरें जमा कर कहा, “पर तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो?”

“कूँ ही।”

बड़ी निकट स्थिति थी कवि कमल की। विश्वनाथ उसका निकट-तम का तो नहीं, दोस्त अवश्य था। वह साहस करके उसके यहाँ गया।

“क्या उसे बोला दिया गया है,” उसने गम में सीखा। उसने माझूर से आवाज लगाई। विश्वनाथ आया। पूछा, तुम आज कैसे आये?”

“दयाई देन। मैं किसी कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिये बाहर खला गया था।”

“आओ, आओ, तुम्हारी अपनी आमी से मिलो।”

कवि के पाँव जमीन से चिपक गये। कमल सहमता-सहमता सा ऊपर बना। कमरे में बैठ गया। उसकी उत्सुकता बढ़ती गई।

“मैं अभी तुम्हारी आमी को बुला कर लाता हूँ।” वह बाहर गया

और उसे बुला लाया ।

“आह ! नाटलॉन की साड़ी में यह अप्सरा से कम नहीं लगती है, कमल ने मन ही मन में कहा, यह यूँगी बहरी.....!”

“आप भीमती विश्वनाथ सरिता हैं, और यह है मेरे दोस्त कवि कमल !”

“नमस्ते । और सुनिये, इन्होंने इन्हें मोहफा तो नहीं दिया ?” सरिता वनाम चिता ने कहा—

‘नहीं ।’ विश्वनाथ ने कहा । कमल स्तब्ध सा उसे देखने लगा ।

“फिर इन्हे कहिये कि ये मेरे वे प्रेग पत्र मुझे लौटा दे जो मैंने इन्हे हाथ ही में जिले है ? मैं उन्हें अपनी नई कहानी यूँगी लकड़ी में प्रयोग करूँगी ।”

विश्वनाथ ने विस्मय होकर पूछा, “कौन से प्रेग पत्र ?”

सरिता ने पूरा किस्सा सुनाया कि हजरत किस तरह उसके पीछे बीजाना हुए थे और मरने जा रहे थे । पूरा किस्सा सुनकर विश्वनाथ खिलखिला कर हँस पड़ा । कमल का मानो खून सूख गया । वह दृष्टि हुए स्वर में बोला, “आप मुझे क्षमा कर दीजिये ।”

विश्वनाथ ने झिझकियाकर कहा, “यह झुक से ही ऐसी नदखट और शीतल रही है । पाज-कल के मजनुओं, फरहादों, रोमियों को यह खूब सबक देती है । मेरी तो इसने अग्नि परीक्षाएँ.....।”

धीरे धीरे सरिता ने कहा, “मैं जाय लेकर अभी जाती ।”

“क्या यह सरिता लेखिका है ?” उसने मन ही मन कहा, “जिसकी कहानियाँ इतने खूब छप रही हैं ।” और उसके भास पर पसीना थमक उठा ।

×

×

×



## पत्थर में पानी

झाँके की सजा ससम हो गई। उसे मुक्त कर दिया गया। उस वर्ष के लम्बे कँदी जीवन के बाद प्राण नहा उस ससार में बापस आ रहा था, जिससे वह एक दिन हत्या के अपराध में बंचित कर दिया गया था। उसने हत्या की थी, एक सेठ की, प्रसिद्ध गुण्डे के साथ। फलस्वरूप उसे दस वर्ष की सजा सजा मिली थी।

गत दस वर्षों में उसने जेल-जीवन के खट्टे-कड़वे अनुभव प्राप्त किए। उसने गलीचा बनाना सीखा। पहले-पहल बड़े भी छाए, क्योंकि वह अपनी कठोर और कमझाऊ मनोवृत्ति पर सहजता से अधिकार नहीं कर पाया था। बाद में उस की प्रकृति और एकांत और प्रतिबन्धों के कारण दमस्तर्गुन होती गई और वह एक भद्र व्यक्ति बनते लगा।

कँद से बाहर निकलते ही उसने एक संभड़ाई ली। अपने समश्रुमुक्त बेहरे पर हाथ फेरा और खुले आसमान की ओर टाका। उसकी दृष्टि क्षण भर के लिए नीले आकाश पर जम गई। कपास के खिलौने की तरह छोटे-छोटे मेघ-खण्ड विसिज के पश्चिमी किनारे पर लँट रहे थे। सत्पश्चात् उसने जेल के सामने से निकलती जम्बी सड़क पर दृष्टि जमा ली।

एक बुजुर्गी लवनों में अभ्रु लिए उसके समीप खड़ी थी। उसके साथ सात-आठ साल का बच्चा था। बच्चा सेठे और

फटे कपड़े पहने हुए था। युवती के आस-पस-पस और जगली घास की तरह कठोर थे। उसके चेहरे पर व्याध की घनीभूत रेखाएँ दी हुई रही थी। उसके दो भ्रश्रु जैसे ही कपोलों पर बहे, जैसे ही उसके भ्रश्रो पर मुस्कान धिरक उठी। भ्रश्रुमरी मुस्कान। आके भ्रप्रतिभ-सा उसे देखने लगा। वह युवती भागी। उसने पीछे घूमकर देखा—वह एक लंबी के गले से लिपट रही थी। दोनों के मुख अधुप्लावित हो उठे।

युवती कह रही थी—“मैं वो रातो से लो नहीं सकी, विष्णु के बापू। लगता था—तुम भ्रभ्र आए; भ्रभ्र आए। बेजो न, अपना विष्णु जीजी कलास में पान भी हो गया है।”

युवक रोता रहा। वह एक बसक था, किसी प्राइवेट कम्पनी में किसी गबन के मामले में उसे चार वर्ष की सजा हुई थी।

आके की आँखें भी राजस हो उठी।

उसे रूपही की याद हो आई। क्या उसकी भी रूपही इसी बैथनी से उसका इंतजार करती होगी। तब वह थोड़ी दूर पर स्थित एक वृक्ष की छाया में खड़ा हो गया। उसके स्मृति-पटल पर एक गेहूँ रंग की बुल-हिन का चेहरा उभर गया। एक मासूम लड़की। उसकी वो आँखें—काली-काली, बड़ी-बड़ी। उसकी खनकती चूड़ियाँ और उसकी बजती पैजमियाँ।

जेल् से उनका गाँव घर भील दूर था। वह हुंवा की तरह चल पड़ा। भ्रनन्त के यात्री की तरह थड़ी थर विद्याम किए बिना। जिस बलते वह गाँव की सीमा के पास पहुँच गया। परमी के मिलने की उरकंठा ने उसकी भूल और व्यास को भी भगा दिया था।

किन्तु गाँव की सीमा पर जाते ही उसके पाँव ठिठक गए। उसके भ्रभ्रस में पश्चात्ताप का लुफ्तन सा उठा। उसके सभस दो सूखे-सूखे गेहूँ नाच उठे। दो प्यासी-प्यासी और भुझी-भुझी आँखें बिल्ली की भाँकों की तरह बमक उठी। नाच उठी—एक कोपड़ी जिसके तिणके भ्रस-भ्रस थे, जिसमें गन्धकी का साम्राज्य रहता था जिसमें लीज-स्तीठार ही दीपक

जलता था। दोप समय जहाँ अन्धेरा-ही-अन्धेरा छाया रहता था। उस अन्धेरे में एक रमृति उभर आई। बहुत समय पुरानी बात है—

“माँ !”

“क्या है ?”

“बहु कहाँ है !”

“क्यों ?”

“मे पृथ्वी हूँ, बहु कहाँ है !” — बाँके गाराब के नखे में धुत था। ससका सारा शरीर काँप रहा था। पाँव लड़खड़ा रहे थे।

“क्यों ?”

“जवाब नहीं देती हो, क्यों-क्या मगा रही है। बताती है या मैं...।”  
—और उसने झोंपड़ी के मिट्टी बर्तनों को तोड़ना शुरू कर दिया था।

माँ विह्वल हो उठी थी। तड़पकर बोली थी — “ओ भिपूते, राम-सा पीर तेरी कुबुद्धि को ठीक क्यों नहीं करता। तूने बर की एक-एक चीज बेच दी है। माँ के नाक का कांटा भी नहीं रखा। बेचारी बहु के हाथ की मूँड़ियाँ तो रहने दे ?”

बहु राक्षस की तरह गर्वा — “बता न कलमूँड़ी, तेरी बहु कहाँ है ?”

“नहीं बताऊँगी।”

“नहीं बताएगी।” — उसने एक ठोकर से पानी का मटका फोड़ दिया था। माँ क्रोध में भर उठी थी। पर वह भावारा बेदे से बहुत भावकित भी थी, इसलिए उसने अपने हाथों से अपने को पीटना शुरू कर दिया था और बहु और से चिल्लाने लगी थी।

सारा हरिजन मोहल्ला इकट्ठा हो गया। घरारों के पंच भासू ने बाँके को समझाना चाहा पर बाँके ने उसे और से बक्का बेकर कहा — “भासू दे पंच का बच्चा, एक ही घुसे में पंचे को गबर कर दूँगा।”

भासू बेचारा गिरता-गिरता बचा। फिर भी झोंपड़ी के तिनके उस-की बाई बाई में जुग ही गए। वह बड़बड़ाता हुआ उठा था — “यह कमार बंस में राक्षस पैदा हो गया है।”

वह श्वर चला ही था कि रूपसी भा गई थी। रूपसी ने धाते ही उधों ही विकराल-भूति बाँके को देखा, त्यों ही उसके प्राण सूख गए। वह पलट कर वापस भागी। बाँके ने उसे देख लिया और उसने उसका पीछा किया।

रूपसी उसकी पकड़ में आ गई थी। उसने रूपसी के बाँस पकड़े और उसे गंभी गालियाँ निकालने लगा था।

“बूढ़ियाँ दे।”

“नहीं दूँगी। बार चाँदी की बूढ़ियाँ मेरे सुहाग की निशानी हैं।”

“सुहाग की बच्ची, देती है या.....”

रूपसी ने उसे धक्का दिया और फिरा भागी थी। अब बाँके रोव व घृणा से भर उठा। उसने लपक कर अपनी बलिष्ठ बाँहों से रूपसी को उठाया और पटक दिया। रूपसी के मुख से खून बह उठा। वह अचेत हो गई। भीड़ जोर से चिल्लाई, मर गई, बेचारी मर गई।

और सचमुच बाँके अबरा उठा था। उसका लला एकदम उतर गया था और वह वहाँ से भागा था। भागा सो कभी वापस गया ही नहीं। उसे यह तो मासूम पड़ गया था कि रूपसी मरी नहीं है, किन्तु वह बदमाशों के दल में शामिल हो गया, फलस्वरूप एक हत्या के अभियोग में उसे दस वर्ष का कारावास हो गया था।

बाँके बढ़ते अन्धेरे को देख रहा था। उसकी आँखें आज कदरुआ से भरी थीं। उसकी मन की नसे दुःख के कारण छूट जाना चाहती थीं। सचमुच उसने अपनी पत्नी को पत्नी नहीं समझा, भाँ को माँ और बाप को बाप नहीं समझा।

फिर आज वह क्या सूँह लेकर घर आएगा? जाएगा, वह अब एक अन्धेरे इन्सान की तरह जिएगा। वह गलीचे बना-बना कर बेच कर सबको सुख देगा। अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करेगा।

अन्धेरा गहरा होता जा रहा था।

‘वह गाँव में छुटा। भोंपड़ों की जगह गए घर बन गए थे।’, भंदंगी

से भरा-पूरा मोह-लाला साफ-सुधरा हो गया था। बच्चे एक गैस की साइटेन के नीचे पड रहे थे। बांके ने उन्हें स्नेह भरी दृष्टि से देखा और आगे बढ़ गया।

‘यही तो मेरा ओपडा था।’—उसने मकानों के भीच खाली जगह को देखकर मन-ही-मन कहा। वह विमूढ़-सा बहुत देर तक वहीं खड़ा रहा। वह प्रपलक धम्बेरे में सबको सा अस्तित्व बताते ओपडे के वास-कृत को निहारता रहा। सोचता रहा—इपसी उसे देखती ही उसके गले से निपट जाएगी। उसकी बाहे उसके गले में होंगी और पुश्कार-पुश्कार कहेगा, “न रो पगली, अब मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं भी नहीं जाऊँगा। अब मैं बुराईयाँ छोड़कर आया हूँ।” वह रोना बन्द नहीं करेगी। तब वह प्यार से उसके हांग-भग को भिगो देगा।

वह धम्बेरे में प्रेतात्मा-सा लगा रहा। फिर वह बैठ गया और जमीन पर हाथ फेरने लगा। कुछ बिल्लरे हुए तिनकों को हक-दठा किया। धम्बेरे में उनको देखने का असफल प्रयास करने लगा। उसने सोचा—शायद वे सभी नई बस्ती में चले गए हूँ। सरकार ने हरिजनों को नए घर बना कर जो दिए हैं।

वह वहाँ से चला। नए घरों में दीपक जल उठे थे। एक बूढ़ी स्त्री अपने बच्चे को पढ़ने के लिए डाँट-रहती थी। बांके को अपनी माँ याद हो आई। उसकी माँ उसे देखते ही भील पड़ेगी। कहेगी, “मेरे सरजग मेरे राज, तू मुझे निरआगी बना कर कहाँ चला गया था?” बांके की आँखें भर आईं। उसने अपनी हथेली से अपने आँसुओं को पोंछा। लम्बा साँस खींच कर पुनः विचारों में लो गया, “पर मैं माँ के सामने अपने रूपसी को कहाँ मैं कैसे कहूँगा?”

अचानक वह एक युवक से आ टकराया।

“कौन हो तुम?” बांके ने पूछा।

“भाधव।”

“अरे भाधव तुम।”—बांके ने बिस्मय पूछा—“तुम्हें नहीं पहचाना,

में हूँ बाँके ।”

“अरे बाँके सुना था तुम्हें तो जेल हो गई थी । तुने किसी की हत्या कर दी थी ?”

“हाँ माधव, पर अब मैं एक अच्छा आदमी बन गया हूँ । अपने पाप का प्रायश्चित्त करने आया हूँ । सुन लो, मेरा घर कहाँ है ? मेरी माँ, मेरे बापू और मेरी बहू कहाँ है ?”

माधव नहीं बोला ।

“तू भुप नयो है ?”

माधव ने अपनी गर्दन झुमायी । अन्धेरे के कारण वह उसके चेहरे के भाव नहीं पढ़ पाया ।

“तू बोलता क्यों नहीं ? माधव, तुम्हें मेरी कसम है, बत्ती से बता, मैं सच कहाँ हूँ ?” बाँके काफी उत्तेजित हो गया था ।

“क्या यह है बाँके, तेरे माँ-बाप पपीहे की तरह तेरा नाम रदते-रदते मरत बसे । माखिरी साँस तक उनकी अजान पर तेरा ही नाम था ।”

“माधव !” आर्त्तनाद कर उठा बाँके ।

“रही रूपली, वह पत्ता के घर चली गई । बड़े भान्ध में है । पत्ता का घर शहर के बाहर जो नई बस्ती सी बसी है, वही है, यही तीन-चार मील दूर ।”

माधव चला गया । बाँके निर्जीव सा हो गया । उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया । उसकी चेतना क्षुप्त-सी हो गई । वह वहीं पर बैठ गया, बैठ रहा—अनेक क्षण । बाव में उठा और आकाश की ओर देख कर उसने प्रतिज्ञा सी की—मैं उस बेवफा की बोटी-बोटी को काट कर पीलों को बाज दूँगा ।

उसने बड़ी बेचैनी से रात गुजारी । कभी-कभी क्षण-दो-क्षण के लिए उसकी आँख ज़ी लज जाती थी । पर जैसे ही वह जागता जैसे ही उसके सिर पर खून सवार हो जाता था ।

माखिर सुबह हुई ।

सूर्य देवता ससृति में पीयूषर्वाषणी रहिमयी बिखेरने लगे। बाँक हरिषनों की नई बस्ती की ओर चला मन में तूफान उठ रहा था और घुणा और हिंसा के भाव चेहरे पर मूढखेलियाँ कर रहे थे। नेत्र रक्तिम हो उठे, युद्ध के रक्त पिपासु सिपाही की तरह। नई बस्ती के चौराहे के पास वह अड़ा रहा। बहुत बदन गयी है उसके लोगों की यशा।

“पप्पा कहाँ रहता है ?”—उसने जाते हुए एक व्यक्ति से पूछा।

“वह रहा चौपा मकान, सूखते हुए लाख लौहने वाला ?” व्यक्ति गम्भीर हो गया, “पप्पा जैसे चार है। तुम काम से पप्पा को पूछते हो ?”

“पप्पा रुपली !”.....

“सम्भा, रुपली का ज़ाबिद पप्पा, वही है उसका घर। सभी वह घर में ही है।”

वह उत्तेजित हो उठा। हिंस भाव उसके रक्त में लहरों की तरह बीजने लगे।

—सच औरत बेवफाई की नंगी तस्वीर होती है। किन्तु मैं उससे बदला लूँगा। उसे अपनी करनी का दण्ड दूँगा।

वह जो ही कदम आगे बढ़ा था कि उसे पप्पा आता हुआ दिखाई पड़ गया। वह ठिठक गया। यही है साला चोड़ा, जिस ने मुक से मेरी रुपली को छीन लिया। मैं कम्बख्त का गला टीप दूँगा।

पप्पा के पीछे-पीछे अप्रत्याशित रुपली भागती हुई आई। उसके हाथ में कपड़े में लिपटी कुछ रोटियाँ थीं।

“चम्पू के बापू, उतावली में रोटियाँ ही भूले जा रहे हो।” उसके हृद में कृत्रिम रोष था—“मैं देख न लेती तो दिन भर भूखों मरना पड़ता।”

“चम्पू की माँ, तेरे होते मुझे किसी की भी चिन्ता नहीं है। मैं बड़ा भागवान हूँ, नहीं तो तू मुझे कैसे मिलती ?”

“भागवान तो मैं हूँ, जिसे तेरे जैसा सीधा-सीधा मर्द मिल गया, नहीं

तो वह निर्ययी बाँके मुझे मार ही डालता । अच्छा हुआ कि वह रास्ता कहीं चला गया ।”

“तुझे उसकी याद आती है ?”

“नहीं । वह याद रखने जैसा आदमी ही नहीं था । हाँ, उसकी गालियाँ ज़रूर याद आती हैं, उसकी मार-पीट ज़रूर याद आती है । राम-ना पीर ने मुझ निरभारी को उससे छुड़ा कर सुभारी बना दिया ।”

तभी बच्चे बीड़े-बीड़े आए । सबसे बड़ा बच्चा बोला—“माँ-माँ, जम्पू ने तेल गिरा दिया ।”

“मैंने नहीं गिराया, तेल गिराया है, गोपू ने ।”

“झूठ बोलता है ।”

बच्चे आपस में लड़ पड़े ।

शोरगुल मच गया ।

पद्मा वहाँ से चला गया ।

कपली सभी बच्चों को लेकर जाती ।

बाँके सम्मोहित-सा वहाँ खड़ा रहा । हिंसा, डेव और प्रतिशोध वह सभी कुछ भूल गया । केवल पत्थर की प्रतिमा की तरह विष्णुआश पीर मचल खड़ा रहा ।

जब कपली उनकी दृष्टि से ओझल हो गई तब एक कौपकपी के साथ जहाजी बेताना लौटी । प्रतिशोध की विषाक्त भावना पुनः जागृत हो उठी ।

वे इस खिनाल का मूँह नोन लूँगा । --वह निश्चय कर वह एकदम आगे बढ़ा । नीचे पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा था । बाँके आविष्ट में उसे नहीं देख सका । ठोकर खा गया । बढाव से गिर पड़ा । वगमगुमग मूँह झूल-धूसरित हो गया । सिर से खून की पतली लकीरें सी गिर आती । आँखों के आगे धुँव-सी छाने लगी । मर्मोन्मक पीडा की एक लहर उसके सन में दौड़ गई । वह कदला से पुकार उठा —माँ !

चास्ता सूना था । थोड़ी ही दूर पर पानी के तल पर कुछ भुवदियाँ खूब मर रही थीं ।



‘मैं की-यावाज सुनकर उनका ध्यान बाँके की ओर गया ।

एक ने कहा—“देख री रूपली, कोई बेचारा गिर गया है ।”

रूपली ने ध्यप्रता से कहा—“हो-हो, बल री ।”

कहकर तीनो जलियाँ भागीं । रूपली ने आगे बढ़कर उसे उठाया । दाढ़ी से आच्छन्न बेहरा भी उसकी नजर से छिपा नहीं रह सका । वह पहचान गई । उसका खून बरफ की तरह जम गया । कपरीर पसीने से भीग गया । जबान से निकल पड़ा, “हाय राम !”

‘क्या करें ?’

‘मेरे घर ले चलो, बेचारे को छाट पर सुला देंगे ।’

गहारा देकर उसे रूपली अपने घर ले आई । थोड़ी देर में दूसरी ओरते चली गयी । बच्चे कौतूहल की भावना लिए आगुस्तक को देख रहे थे ।

रूपली ने उन्हें डाट कर भगा दिया । बच्चे उदास से चले गये । रूपली ने बाँके का ध्यान छोड़ा । वह उसे पंखा झलने लगी । धीरे-धीरे बाँके ने झींझें छोलीं । रूपली उसके सलाट पर अपना खुरदरा हाथ फेर रही थी ।

बाँके कुछ बोले, इसके पहले ही रूपली ने कहा, “मैं बहुत सुखी हूँ, मेरे बार बच्चे हैं, मेरा अपना घर है, पति है । तुम तो बाँके मुझे बार फेर ही चला गया था, पंखा ने मुझे नया जीवन दिया है । उसने गंभी-गंभी की धूल नहीं झनने दिया, गले-गले का हार नहीं झनने दिया, अन्धका मेरी क्या दुर्वशा होती ?” कहकर उसने सम्भा साँस किया । उसकी दृष्टि सूर्य की ओर लगी हुई थी, “सब हूँ फिर बना गया है । बरकर तू मेरे जीवन में बहर धोलेगा । पर तू इतना याद रखना कि मैं अपनी जान दे दूंगी पर आन नहीं दूंगी । मैं पंखा को नहीं खोद सकती । बाँके ! मैं हाथ जोड़ती हूँ, तू अपना नया घर बसा ले । मेरे दूरे-दूरे घर को मत उखाड़ ।”

‘बाँके के चेहरे भीम आए । वह कटके साज उड़ा । उसकी मुद्रा पर कठोरता-कीमंसता का विचित्र सामंजस्य था । वह घर के द्वार की ओर बढ़ता हुआ बोला, “तुम गलती पर हो । मैं बाँके नहीं हूँ । मैं तो एक

भटका यात्री हूँ । तुमने मुझ पर दया की, इसके लिए मैं तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की मनोतियाँ मनाऊँगा । भगवान तुम्हें सुखी रखे । तुम्हारे मुली जीवन को बनाए रखे ।”

और बाँके कइया से भीया हुआ बज पड़ा रूपली ने जोर से कहा—

“बाँके, बाँके, रोटी तो खाते जाओ ।”

परन्तु, बाँके ने पीछे मुड़कर नहीं देखा । रूपली की आँखें भर आईं ;

---

## मैं मर गई हूँ

मैं ठगा-सा उसे एकटक देखता रहा। वह लम्बी कमरवारी भाँखे और कर्णों पर बेतरतीबी से नाचते हुए बाल। पहले की अपेक्षा थोड़ा-सा मोटा शरीर। और सभी दिग्गो से भिन्न कूल्हों को मटकाकर एवं आकर्षणमय उत्तेजित बाल से चलकर सभी को मोहना।

वह क्षण प्रति क्षण मेरे करीब आती गयी।

चौरंगी, कलकत्ता की रंगीन चौरंगी। चहल-पहल। कोमाहल। विभिन्न मेहरों की संगम-स्थली।

अब वह मेरे बहुत करीब आ गयी थी। लेकिन उसका ध्यान सर्वथा कहीं और था, इसलिए वह मुझे नहीं देख पायी। उसकी नज़र स्थिर थी—ठीक सामने। मैं बड़ी नाटकीयता से उसके सामने खड़ा हो गया। वह मुझे एक पल विस्मृत-सी देखती रही, फिर होठों पर धुरकाग बिखेरती हुई बोली, “अरे तुम ?” उसने मुझसे तपाक से हाथ मिलाया।

मैंने देखा कि वह स्थूल होने के साथ-साथ पीली भी पड़ रही है। उसकी भाँखों के नीचे काली परछाइयाँ गहरी हो गई हैं और जो सुनाव उसके चेहरे पर भाँखों को दिखाए रहती थी वह खेच-पिन्ड के रूप में रह गई है।

वह एक तरस भरी मुस्कान बिखेर कर बोली, “तुम मेरी झूठी देख रहे हो ? झूठी है ना ?” उसके चेहरे पर

जराबी की काली घटाएँ गहरे रूप में छा गईं। एक असह्य वंभीरता भी उस पर।

मैने कहा, “बलो, चाय पी जाय।”

“चाय।” वह चौंक पड़ी। उसकी नजर भीड़ में खो गई। वह अपने आपसे जैसे बोल रही हो, इस तरह बोली, “मैं चाय नहीं पीती। चाय मुझे अच्छी नहीं लगती है।”

मेरी आँखें फिर उसके रूप पर जम गईं। वह बहुत ही बदल गई थी। उसका शारीरिक रूप विकृत हो गया था। और मेरी दृष्टि तैरती हूँ उसके पैर पर जम गई। उसका पैर ठीक तीन बरस की तरह था भी फूला हुआ था।

“क्या सोचने लगे?” वह बरा ऐज स्वर में बोली। मैं चौंक पड़ा। “तुमने चाय कब से छोड़ी?”

“अभी से। सही बात यह है, यतीन्द्र कि मैं कुछ ठिक करना चाहती हूँ। यदि तुम पिलाना चाहते हो तो—” वह एकदम चुप हो गई।

“आओ, किसी ‘बार’ में चलें।”

“नहीं, हम अपने घर ही चलेंगे।”

हम दोनों शराब लेकर आ गये।

फ्री स्कूल स्ट्रीट की एक छोटी-सी गली में सीलिया का फ्लैट था। हम दोनों ने जैसे ही उसके फ्लैट में प्रवेश किया वैसे ही चार बच्चे चाँप-चाँप चाँप-चाँप करते हुए आ गए। पूरे चार बच्चे। “और एक पैट में? बाबा रे बाबा! एक कम्पन-सी खड़ी गई मेरे मन में।

तभी उसकी काली-कसूटी आया आ गई। आया के बीस बहस ही सफेद और उज्जले थे। उसने बच्चों को अपने कान्ध में किया। सबसे छोटा बच्चा जो चंद ही साह का था, अपना अंगुठा घूस रहा था—आया की मोड़ में।

सीलिया ने बिना झिंक्क के कहा, “इस रूप ओ, यतीन्द्र!” मैंने

बपए दे दिए ।

सीलिया ने आया को हुक्म कर दिया, "तुम बच्चों को बाहर ही जाना जिसा आओ। मोड़वाला वह मुल्ता है न, उसे कहती जाना कि वह यहाँ दो ग्रामसेट, पापड़ और कटा हुआ प्याज भेज दे। ऐसे उसे तुम्हीं दे देना।"

वह बहुत ही तेजी से यह सब कह रही थी। कहकर वह तुरन्त ऊपर चढ़ती हुई बोली, "आया! ऊपर कोई न जाने पाए, इसका ख्याल रहे।""आओ, यतीन्द्र।"

हम दोनों कमरे में आ गए। वह पीने की तैयारियाँ करने लगी। मैं एक सोफे पर आराम से बैठ गया। कमरे में कोई भी परिवर्तन नहीं था। हाँ, कुछ पुराना अबरय लग रहा था। मेरी दृष्टि कमरे में चौकती रही। एकाएक दृष्टि नासिर की तस्वीर पर रुकी, "नासिर कहाँ है?"

उसके चेहरे पर एक असा जोर की हलचल हुई और वह संभत स्वर में बोली, "वह जेल में है। उसे तीन बरस की सजा सजा हो गई है।"

"क्यों?"

"सोने का तस्कर। दरमसल वह बड़ा ही बदमाश है। अब तुम्हीं सोचो, रास्करी सभी करते हैं, पर पकड़ा प्रायः नहीं जाता है।"

"वह मेरे सामने आकर बैठ गई। सराब को गिलास में डालते लगी। हलके नीले रंग के छोटे-छोटे कलारमक गिलास। ग्रामसेट, पापड़ और प्याज भी आ गए। उसने सठकर सफ़ेद की जगह रंगीन हलका प्रकाश कर दिया।

"यह तो तुम्हारे लिए बहुत बुरा हुआ।" मैंने सहानुभूति से कहा।

"हाँ, हुआ तो है ही।" उसने थोड़ी जापरवाही से कहा और मुझसे अपना गिलास टकराया। उसने एक बड़ा घूँट लिया। बोली, "नासिर जेल में है। तीन, याद पहले उसे सजा ही गई थी। इस बार वह बुरी तरह से बरबाद हो गया है। मेरा याने अपनी बीबी का भी खर्च अब

नहीं उठा सकता। इधर मेरी पीने की मायत भी बढ़ती जा रही है। क्या करूँ, यतीन्द्र, जब कुछ और काबिल थी तब शराब मे वह सचा नहीं आता था जो अब फाकामस्ती में आता है।” उसने हाथ के मजीद फटके के साथ एक चूट और लिया। आया गिलास खाली हो गया, “वाहे हम इसे कुछ भी क्यों न कहें, पर जो चीज हमें मुश्किल से मिलती है, उसके प्रति हमने बहुत चाह पैदा हो जाती है।” अब उसकी मजर मुझ पर जम गई। वह ग्रामसेट के टुकड़े को मगले धातों के बीच बचा-कर बचपना-सा करने लगी। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था कि मैं उसे क्या कहूँ? तभी वह बोली, “तुम से कुछ नहीं छिपाऊँगी। छिपाऊँ क्या छिपाने को नबीयत भी नहीं हो रही है। इच्छा हो रही है कि सब कुछ कह दूँ।” प्रायः पूरे बीस-पच्चीस दिन के बाद पीने को मिल रही है। छक कर पीऊँगी। तुम पीओ न? मे लो बड़ा चूट।” मैं तुम्हें कह रही थी, इधर मुझ पर बड़ा कर्ज हो गया है। जब नासिर को जेल हुई थी, तब के मिल बाकी पड़े हैं। नासिर को मेरी हालत का पता है, पर वह मजबूर है। यहाँ उसमें इतनी हिम्मत है कि वह मेरे दुःख को दूर करने के लिए सभी कुछ कर सकता है। तुम यह अच्छी तरह जानते ही हो कि वह मुझे बेहद चाहता है। वह मेरे लिए सब कुछ कुर्बान कर सकता है। लेकिन अभी वह जेल में है।” उसने फिर गिलास भर दिया और बरफ के टुकड़े शराब में खोवने लगी। मैंने उसे डोका, “शराब कम पिया करो। शराब सेहत पर भी असर करती है, सीनिया। कितनी बेडंगी और बेडोल हो गई है तुम्हारी बेह। कभी बीसे में अपना चेहरा देखती हो? गुलाबी रंग पीला हो गया है।” मैंने सिगरेट जला ली। बोनाकार मुझी छोड़ता हुआ मैं फिर बोला, “और नासिर जैसा पडा-बिखा भादमी, जो मार्सन कलबर का हामी है, इस तरह बच्चा क्यों पैदा कर रहा है, मैं नहीं समझ सकता। कम से कम उसे तो संतति-निमयन शाखा प्रोपेराग करा ही लेना चाहिये।”

वह निष्कप हो गई। तब उसकी मोतल पर थी। जयन्त-वर्दास

और कभी-कभी रंझाएँ गहरी हो गईं। चीमे से बोपी, “वह नज़ी करागया।”

“लेकिन क्यों?”

“इसलिए कि मैं उसके हाथ से ब निकल जाऊँ।” अब उसकी लज्जत नासिर की तस्वीर पर थी। ललाट बाँधों में उतर उतरकर उसकी पलकों को भारी करने लगा था।

मुझे भी उन्माद-सा आने लगा। किन्तु मैं निरन्तर अपने मस्तिष्क पर जोर देकर अपनी चेतना को जागरूक किए हुए था। ललाट पर बल डाले हुए मैं बोला, “अगातार बच्चे पैदा करने का हाथ से निकल जाना से क्या सम्बन्ध हो सकता है? क्या तुम अगातार बच्चे पैदा करती रहोगी तो तुम उसे छोड़ कर नहीं जाओगी? तुम अभी जा सकती हो।”

वह गीरे से हँस पड़ी, “तुम मेरी बात का मतलब नहीं समझे। मैं भी मैं इसे छोड़कर जाना चाहती हूँ और मैं ही मे उसके पास रहना चाहती हूँ। मेरी स्थिति अब पालतु जानवर की तरह है। जो मुझे हिफाजत में रखेगा, उसे मैं जात नहीं मानूँगी। क्योंकि बीते दिनों ने मेरे 'जुद' के अस्तित्व को मिटा दिया है। और मैं अपने बारे में कुछ सोच भी नहीं सकती हूँ। जो क्यादा साकसवर?, वह मुझे किसी से भी छीन कर ले जा सकता है। मुझे हिफाजत चाहिए, हिफाजत। ...ऐसी बातें मेरे अरिज को गिराती अकर हैं, पर मेरी स्थिति ठीक नहीं है। अगर मेरे रूप के प्यासों ने इस राह से छुड़रना छोड़ दिया हैं, क्योंकि मैं अब कुतिया की तरह पिल्ला पैदा करती हूँ। इस फूले हुए पैद की देखकर मादमी के मन में एक धिनीना ब्याल पैदा होता है और भोग की सभी रंझाएँ ताब के महल की तरह दृढ़ जाती हैं। इस फूले पेट की वजह से कन्दाबटर अम्बुलगनी इस बहर को हुमेसा के सिध छोड़कर चला गया। वह दो साल तक इसी फिक्त में रहा कि कब सीसिया वाली हो और कब मैं इसे लेकर उड़ूँ। चाहे यह बात कितनी कड़वी और जहरीली क्यों न हो लेकिन हमारे संस्कार, समाज और सज्जन का हमारे ऊपर

से यदि कोप उठ जाय तो सभी भर्त्सक औरत को एक वासनात्मक ही नजर से देखे और सम्यक्ता के पुतले इन्सान पल-भर में प्रराजकता फेंका दे। बहुत ही प्रजीव स्थिति है आदमी के मन की। रजाक के ये दोस्त—अम्बुल, नासिर और यह हुनीफ—सब रजाक को इज्जत केवल मेरे लिए देते थे।”

“और यह हुनीफ मेरे रूप का पक्का पुजारी था। मुझे बेहद चाहता था। जान देता था बेचारा। बेचारा इसलिए कि उसकी मेरे पीछे नासिर ने बड़ी दुर्गत की। नासिर बुनिया की हर ताकत से लड़ सकता है, भिर खातिर।” यतीन्द्र, रजाक के बाव में ‘मैं’ नहीं रही। मुझे लगा कि मैं मर चुकी हूँ। मेरी आत्मा इस भ्रुपुम शरीर से निकल गई है और एक जीता जागता मांस का मैं पिछ भाग हूँ।”

“रजाक !” वह इस नाम को लेकर बनीभूत ब्यथा से धिर गई और उसकी नशीली आँखें थोड़े क्षण के लिए बन्द हो गई और उगम गिलास को एक ओर करके मेज पर बाये गाल के बस अपनी गर्दन को रख दिया। तब उसका सारा शरीर ढीला-ढीला हो गया और उसके होंठ घातक के असीम अभिप्राय से चमक से उठे। वो बूँद आँसू भी उसके पतल-पुलिन को तोड़कर एक-दूसरे से मिलाते हुए सेवा पर गिर गए।

मैंने आत्मिक स्नेह से कहा “खलिबा, तुम्हें हिम्मत से काम लेना चाहिए। दुर्योग हर एक के जीवन में आते हैं।”

वह उठी और गद्-गद् कराव पीने लगी।

“यह सराब बहुत अच्छी चीज है। मैं इसके इजाजत करने वाले को सहेदिल से अभ्यवाद देती हूँ। यही एक ऐसी चीज है जो कभी-कभी मुझमें मेरी आत्मा को थोड़ी देर के लिए वापस जगा देती है और मेरे सामने रजाक का चेहरा भाव जाता है।” यतीन्द्र ! रजाक को, मैं जितना चाहती थी, खतना ही नासिर मुझे चाहता है। वह एक तरह से निहायत गिरा हुआ इन्सान है किन्तु वह मेरा कभी भी बुरा नहीं चाहता। जब रजाक से मेरा विवाह हुआ था और रजाक ने माँ-बाप से उसे अपने घर



व सबसे से अलग कर दिया था तब नासिर ने उसे बड़ी मदद दी थी। उसके लिए जाँब हूँ कर दिया था और तुम नहीं जानते, उसने अपनी भाव-नाओं को सदा जन्त किए रखा। वह मुझे चाहता था पर उसका दोस्त रजाक इस रहस्य को कभी भी नहीं जान सका और न मैं ही। रजाक की मीत के बाव फ़िर मेरी जिन्दगी पहाड़ी नदी की तरह बही। टेढ़ी-मेढ़ी और कई घुमावदार घाटियों से होकर।

“हाँ तो, मेरे रूप के कारण रजाक को स्नेह-सहयोग देने वाले बहुत से मित्र मिल गए। सभी की गिळ-ठप्टि मुझ पर लगी थी। मेरे मौ-आप भी मुझसे खुश नहीं थे। वे हैं हिन्दुस्तानी किश्कियन, पर यूरोप को अपनी जन्मभूमि समझने हैं और उनका वश चले तो वे हिन्दुस्तान के कुत्तों तक का भी धर्म परिवर्तन करा दें। मैं हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी बोलती थी और मेरी माँ ब्राह्मी थी कि मैं केवल अंग्रेजी बोल जो हमारी मातृभाषा है। दूसरा उनका आग्रह था कि मैं भले ही रजाक से लौटी कर जूँ पर उसे ईसाई धर्म में लाकर। अगर मैंने इस अनुपम रूप-यौवन से अपने मजहब का एक भी इन्सान नहीं बनाया तो मैं प्रभु के प्रति बकादार नहीं कहलाऊँगी, क्योंकि यह रूप प्रभु का दिया हुआ है और मुझे इस रूप से उसके मजहब में एक बंदे को बढ़ाना ही चाहिए। किन्तु रजाक को वह मंजूर नहीं था। रजाक ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, “तुम अपने रूप से मुझे नाजायज बातों के लिए नहीं बधा सकती। मैं तुम्हें गृहव्यत ऊरुर करता हूँ पर मैंने उसके लिए अपना मजहब बदलने की तुम्हारी इर्त नहीं मानी थी।”

“मैं क्या करती? मैं तो उसे चाहती थी। वह एक अलबेला और अनोखा इन्सान था। मैंने उससे छुपचाप लावी कर ली। मसीहा यह निकला कि उसके लक्षपति माँ-बाप इसलिए उससे मरवा हो गये कि वे उसकी शादी अपने बेलावरी आसपास की किसी अनी संझकी से करना चाहते थे और मेरे माँ-बाप मुझसे इसलिए मरवा हो गये कि मैंने रजाक को ईसाई नहीं बनाया। पर हूँ ‘कोई कुश’ नहीं था। उसके

कई दोस्त था गये—नासिर, अब्दुलगनी, कन्दाक्टर, मुहम्मद हनीफ़।” उसने बातों ही बातों ब्रूसरा गिलास भी खाली कर दिया था और वह जैसे ही फिर शराब डालने को तैयार हुई, वैसे ही मैंने उसे रोक दिया।

“अब अधिक मत पियो। दस्ताना पीना अच्छा नहीं।”

वह रुकी। उसने मेरी ओर देखा और सूखी मुस्कान के साथ यह बोली, “थोड़ा सा और। अभी मेरी बात जल्म नहीं हुई है। आज मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगी। ऐसे ही सच्चे चरित्रों की तुम क्या लिखो। यही नया सर्जन होना, नया क्लियेसम, एकदम नया। ऑरिजनल, मौलिक और अनोखा।” उसने धाधा गिलास भरा और वह शामनेट का टुकड़ा जाने लगी। मैं उसे लेकर अपने धाप से कई प्रश्न करता रहा। वह गिलास को इस तरह घूर रही जैसे वह उगमे अपनी प्रतिबिम्ब देखना चाहती हो। बोली, “हनीफ़ गुफ्त पर पुरी तरह प्राधिक हो गया। उस की हडि़स उसके मन में ही कुँडली मारे साँप की तरह घुलकारती रही और एक दिन हमने ‘भाभीजान’ की आड़ में रजाक की गैरहाजिरी में मेरे साथ बलात्कार करने की चेष्टा की। मैं तड़प उठी, पर मजबूर थी। ऐसी स्थिति थी कि मैं कुछ कर नहीं सकी। वह चला गया। मैं गंभीर बनी बैठी रही। मुझे लगा कि यह सेक्स सबसे असवान है। आदमी को किस हद तक गिरा देता है? आदमी इसी की वजह से बहुकपिया बनता है, अनेक रूपों की रचना करता है। उसका चरित्र अमिफ-सैला के जाबू-भरे अमलकारों का अक्लम और असंग हो जाता है। कब वह किस रूप में धोखा दे जाय, नहीं कहा-समझा जा सकता। मैंने सारी कहानी रजाक के सामने रख दी। मैं नहीं चाहती थी कि मेरे आँसुओं और इस कहानी का इसका भयानक अंत होगा। उसी रात रजाक ने भरी सड़क पर एक निर्दयी बल्लाव की तरह हनीफ़ को कत्ल कर दिया। हरीफ़ मर गया और रजाक की उलझ की सर्ज हो गयी।

“अभी दोस्त तुमसे सहानुभूति प्रकट पाँये। अब मुझे साक्ष्य हुआ कि गनी साक्ष्य मुझे अपनी बातों में मेरे के लिए तरस रहे हैं और मौलिक

बड़ी सफाई और चतुराई से मुझे पाना चाहता है। मुझे उन लोगों से बड़ी घृणा है। नफरत के मारे मैं उनसे कभी सीधे मुँह बोलना नहीं चाहती थी। लेकिन रजाक बरसों के बाद लौटगा और रजाक के सम्बन्ध-जान मुझे जल्दी से जल्दी मरवाना चाहते थे। एक दो बार उन्होंने कुचे-छाएँ भी करवायीं। तब मुझे मजबूर होकर नासिर के घर जाना पड़ा। नासिर मुझे धीरज देता था। जीने की प्रेरणा देता था और अपने कठारों से मुझे प्रहसन करना था कि वह उसे बेहव चाहता है। इधर गनी भी मुझसे बार-बार विनती करता था कि तुम मेरे साथ रहो। लेकिन मुझे नासिर का स्वभाव ज्यादा अच्छा लगता था। नासिर अपने आपको विजनेसमैन बताता था। कहता था, “मैं बिलायत का साथ यहाँ इम्पोर्ट करता हूँ।” वह कुछ भी करता, हो मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। मुझे सिर्फ हिफाजत की जरूरत थी। रजाक के सम्बन्ध-जान नहीं चाहते कि मैं जिद्द रहकर उसकी दीक्षा की हिस्सेदार बनूँ। उन्होंने मेरे पीछे गुण्डे लगाये, पर नासिर मेरी मजबूत कान बना रहा। उसने मुझे बचाये रखा।”

“लेकिन गनी ठेकेदार मुझ पर डोरे डालने लगा, वह बार-बार घर आने लगा। धीरे-धीरे वह प्यार की बातें करने लगा। मैंने नासिर से कहा, पर नासिर ने मेरे व्यक्तिगत मामले में बोलना अच्छा नहीं समझा। और मैं, यतीन्द्र, उसे तत्काल कोरा उत्तर नहीं दे सकी। मैं उसे नहीं कह सकी कि वह मुझमें ऐसी बातें न करे। शायद कोई स्वार्थ मेरे अव्यक्त मन में था कि यदि नासिर ने बोला वे दिया तो मैं गनी...”

“नासिर ने गनी को कुछ भी नहीं कहा। मुझे तब बुरा लगा। नासिर मैं उसकी हिफाजत में हूँ। लेकिन नासिर ने गनी को एक तस्कर के मामले में ऐसा फैसला कि बेचारे को तीन बरस की सख्त सजा हो गयी।”

“अब नासिर अकेला था। वह भाँसा था और मेरी जरूरतों के बारे में कुछ कर चला जाता था। जिस चीज की मुझे जरूरत होती थी उसे हाजिर

कर देता था। नये नये फैशन के गहने और कपड़े। मैं उसकी इस भल-  
मनसाहत से भी तग भा गयी। उसके ग्रहसानों एव सीचेपन ने मुझे  
पागल कर दिया। और एक दिन मैंने उत्तेजित स्वर में पूछा, 'तुम्हें मेरे  
लिए इतना पैसा नहीं खर्च करना चाहिए।'।

वह कुछ नहीं बोला।

मैं उनकी छुप्पी से प्रवण हो उठी। चीख कर बोली, "तुम बोलते  
क्यों नहीं। तुम मुझसे क्या चाहते हो?" उस समय मैं पागल सी हो  
गयी थी।

"वह नीले आकाश की ओर नजर दौड़ाता हुआ बोला, "मैं अपना  
कर्म पूरा कर रहा हूँ।"

"और मेरा कर्म?" मैंने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में व्यास  
भाग के सैलाब की तरह सामोरा सोयी हुई थी। वह चला गया। उसकी  
मुझे छुप्पी पीछा देने लगी। एक ऐसा बंद मुझे सताने लगा जिसे मैं नहीं  
समझ सकी। आखिर मैंने नासिर से कह दिया, "मैं तुमसे शादी करना  
चाहती हूँ।"

"नासिर ने पहले मेरी ओर देखा और बाद में उसने एकदम व्यसता  
में मेरे हाथ मजबूती से पकड़ लिये।"

"नासिर ने मुझसे कानूनी विवाह किया। विवाह की रात मुझे बड़ा  
बुझा हुआ। हम अपने समाज की गलती को छिपाकर भले ही अपनी  
मत्तानों के सामने आदर्श की बातें रचें, पर जो असलियत है, वह कभी  
नहीं छिप सकती। हम नेताओं, रहबरो और ज्ञान की पुस्तकों से राय,  
ईसा, मुहम्मद के महान् खरिबों को पढ़ते हैं, पर कौन ऐसा बना है? भानो  
जमाना खुद हमसे अपनी बातें मनवा रहा है। रजाक के सभी दोस्त  
मेरे रूप के लोभी! मुझे अभी कहकर पुकारते थे और सभी मुझे अपनी  
महमूदा समझते थे। आदमी नासिर से वैसा ही आदिम बना हुआ है।  
पहले वह कपड़ों के बिना नंगा था और बाद वह कपड़ों में मंगा है।"

शराब उसकी आँखों की मूँदने लगी थी। 'बोल्स' से भी बहुत कम

शराब रह गयी थी। वह गर्दन हिलाकर बोली, "उस दिन नासिर बड़ा खुश था। वह झूम उठा। क्योंकि मैंने उससे कहा कि मैं माँ बननेवाली हूँ। उसने एक साँत्वना की साँस ली मानो उसे कोई अप्राप्य चीज मिल गयी हो। और इसके बाद लगातार बच्चे ! गनी आया था। मैं माँ बनने वाली थी मेरे फूले हुए पेट को देख कर वह चला गया। एक बार वह फिर आया। कम मेरी गोद का बच्चा बड़ा हो और वह मुझे लेकर भागे। लेकिन तेरा पेट ?" उसकी आँखें भर आयी। वह भरपूर स्वर से बोली, "मेरा बस यही उपयोग-उपभोग हुआ। लगातार बच्चे पैदा करते-करते मैं भर गयी। मेरा रूप, मेरी ज़रूरी और मेरा धार्मिक सब भर गया। पर नासिर खुश है। धन ही खुश रहता है इन दिनों। क्योंकि उसका विश्वास है कि अब मुझे कोई भी लेकर नहीं भागेगा। गनी यह शहर छोड़कर चला गया। रज़ाक अब तक लौटेगा तब तक मेरे छोटे-मोटे बच्चों की एक फौज होगी। मैं यकीन-दारी पूरी देखा की तरह विश्वासवासी पड़ूंगी—जिसके चेहरे पर झुर्रियाँ कीड़ों की तरह कलबुलाती होंगी। मुँह भी शायद बातों के बिना बहुत ही भड़ा लगेगा।" उसने अपना मुँह मेज पर रख दिया। भासु उसकी आँखों में से बहते लगे। एक बार सुनकियों ने भी जोर मारा। विगलित स्वर में बोली, "शायद तब भी तेरा यह पेट फूला हुआ होगा।" उसने रोते हुए अपना मुँह अपने हाथों में छुपा लिया।

मैं कदरवा से आत्मावित हो गया। वह निर्जीव-सी उसी मुद्रा में पड़ी रही। गया तेज हो रहा था। नीचे बच्चे आ गये थे। इनकी बीसी-धीसी आवाज आ रही थी। मैंने नीचे जाकर आमा से कहा कि वह जाना मे छोड़े। वह थोड़ी देर में खाता से आयी। मैंने उससे जाना का अनुरोध किया। वह जाना जाती रही। बड़बड़ाती रही। रोती रही। मैं उसे निरन्तर हाँस बंधाता रहा। हाथ छोटे हुए उसने कहा, "थे बहुत कुसी हूँ, मरीज, बहुत कुसी। यह शराब न हो तो मेरे दिल का असली दर्द भी न जागे और न मैं अपने आपकी सही हालत को पहचानूँ।

जब मैं यह धाराब पीती हूँ तब मेरा जी मितमाने लगता है। कुछ बाहर जाने को बेचैन, लगता है कि मैं कै कर दूँ। कै नहीं होती है और मेरे दिमाग की घुटन बढ़ जाती है। मुझे यह स्थिति पसंद है। उस घुटन और उस दुःख को मैं शाश्वत करना चाहती हूँ, इसलिए मैं धाराब पीती हूँ।

“यतीन्द्र, तुम्हें क्या बताऊँ...” यह अपने पसंग पर अर्धसायित हो गयी। उसके फूले हुए पेट पर मेरी दृष्टि गयी। मन में अस्मिन्ती जन गयी। तब मैंने अपनी दृष्टि उसके मुँह पर जमा दी। वह दार्शनिक सी बोली, “भीत दो तरह की होती है। एक आम भीत—जिसके होते ही लोग इस वेह को जला भाते हैं, गाढ़ भाते हैं। और दूसरी मन की भीत—जिसे कोई नहीं जानता। वस्तुतः मैं एक तरह से सर गयी हूँ और शिखरी के अजीब सम्मोह से प्रभावित इस वेह को संभावे हुए हूँ। शायद इन्सान के अचेतन मन में अपनी दुर्बला और बरबादी के अन्तिम बिन्दु को देखने की भी एक तीव्रतम इच्छा होती हो। मुझमें वह इच्छा जरूर है, वही मैं जिन्दा नहीं रहती। आज नासिर जेल में है। मुझे दिन प्रति दिन अभाव घेरते जा रहे हैं। जानती हूँ, एक दिन शेष पूँजी भी खिक जायेगी, ये फर्मीयर भी खिक जायेगा, ये बर्तन-भाड़े भी खिक जायेंगे, तब मैं धाराब कहाँ से पिऊँगी, इन बच्चों को रोटी कहाँ से लाकर दूँगा? बड़ी पीड़ादायक स्थिति होगी। फिर भी मैं जिंदा हूँ, कोई अदृश्य शक्ति मुझे मरने नहीं देती। वही मेरे प्रश्न का उत्तर है कि इन्सान अपनी बरबादी के अरमबिन्दु को भी देखना चाहता है...” ठीक खुशी के अरम-बिन्दु की तरह। संघ, यह एक उसका भयानक पीड़ादायक सम्मोह है।”

वह निछावर हो गयी। अपने को संभासती हुई व्यंग, व्यथा और मिथित मुस्कान से स्वागत सा करती हुई वह उठी और बोली, “गुड नाइट। कम मिलेंगे, बिथर यतीन्द्र।” और वह पसंग पर पड़ गयी। बड़बड़ाती रही। मैं उसे ककशाभरी दृष्टि से देखता हुआ बाहर निकल गया, यह सोचता हुआ कि संभवतः यह युग अस्त होना जा रहा है।

## आँचल का विद्रोह

सूर्य मकान के सबसे ऊपरी कंगूरो को भूमता हुआ खिड़कियों से फिसल गया था। अमिता ने जगहार्थ के साथ अँगड़ाई ली और अपने आँचल को व्यवस्थित करके खिड़की जोल दी। उसकी पलकें रात भर न सो सकने के कारण भारी थीं और उसकी छाया में बहकती हुई ज्यथा स्पष्ट ललित हो रही थी। खिड़की के खुलते ही पवन का रोंका आया और उसकी एक झलक को छितरा गया। झलक कन्धे पर बह रहा रही थी। उस ने दान्यमनस्क भाव से उसे ठीक किया, फिर वह गुसलखाने में चली गयी। वहाँ कप और संजन पड़े थे। उन्हें देखते ही उस के तन-मन में कपकपी-सी फूट गयी। वह क्षण भर के लिए गुसलखाने से बाहर चली आयी। भय की हलकी रेखा उसके गेहनों में खिंच गयी।

इसी वक़्त और संजन को लेकर उसका अपने पति से झगड़ा हो गया था। कम ही की बात है कि सुबह-सुबह अमिता उठी थी। प्राची में आभा ज़रूर फूट चुकी थी पर सूर्य नहीं निकला था। उसने सीधे जाकर अलखाने में पति के वक़्त को इस्तेमाल कर लिया था। तभी उसका प्रति-सुवेष्टा आ गया। सुवेष्टा आते ही उस पर बरस पड़ा, “तुम रही, गयी-की-गयी। हंगार बार कह दिया है कि दूसरे का वक़्त कभी भी काम में

नहीं लाना चाहिए, पर तुम्हारी मोटी बुद्धि में यह बात नहीं जम सकती।”

अमिता ने उसे अर्धभरी दृष्टि से देखा। वह दृष्टि उड़नी हुई, मुसल-जाने के फव्वारे को जूमती हुई नल के चारों ओर छितरे छींटों पर क्षण भर रुकी और उस ब्रह्म पर आकर रुक गयी। चंद क्षण वह उसे देखती रही बाद में वह बिना कोई उत्तर दिये ब्रह्म जाने लगी। ब्रह्म को साफ क्रिया और यथास्थान रख दिया।

ब्रह्म का रखना था कि सुघेरा जपका। भटके के कारण उसके बाल का भगला गुच्छा जलाट पर आ गया। बेहुरा भारत्त हो उठा। शरीर में हल्का-सा कंपन भी आ गया। उसने ब्रह्म को हाथ में लेकर उसे इस तरह देखा जिस तरह सिपाही हथियार के खून-भरे चाकू को देखता है। वह बोला, “इसे बाहर क्यों नहीं फेंकती? क्या इससे सारे घर की मारेगी? हथियार बार कह दिया है कि तुम्हें पायरिया है।”

और उसने ब्रह्म को बाहर फेंक दिया। भगवा वहीं पर खत्म नहीं हुआ। ब्रह्म को लेकर जो भगवा आरंभ हुआ था, उसने उनके तमाम जीवन के प्रत्यक्ष पृष्ठों को खोल डाला। माँ-बाप, शिक्षा-अभिक्षा, रूप-विकल्प, राग्य असम्य, कोई भी पहलू ऐसा नहीं बचा जिसको लेकर एक दूसरे को जलीज न किया हो। उन विस्पृत घटनाओं का भी उत्तेज-विस्फेपण किया गया जिनकी उस प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं थी।

जैसे-सुघेरा ने अमिता से कहा, “जब मैं दिल्ली गया था तब तुम्हारे भाई ने मुझ से तमीज से बातचीत भी नहीं की थी और मुझे घनेला छोड़कर बपतार बना गया था, घुम हो तो उसी की बहिन। तमीज तुम में आयेगी कहाँ से?”

अमिता यह सुनकर सन्न रह गयी। अपने हाथों को भटका देती हुई वह बोली, “और मैं तो सातवीं रात को ही आपके द्वारा अपमानित हुई थी। मैं पूछती हूँ कि आप उस रात घेर से क्यों आये थे। शराब में झूमते हुए आपने कितने अभिमान से कहा था कि डाजिय, मैं भिखारी गीपासन के साथ पाटी में बसा गया था।” भिखारी गीपासन, वहीं कुंछटा



गोपालन ही तो है, जो सेठ बनारसीदास की रखैल है !

कुछ भी हो, पति-पत्नी के बीच का वातावरण विवाक्त होता गया गया और बाद में सुवेश हार गया और उसी क्षण वह पर से बाहर चला गया ।

अमिता के मन पर उसके कठ वार जले जाने का कोई असर नहीं हुआ । वह सदा की तरह चरेख़ कार्यों में लगी रहती । उसने पहले पहले घर को साफ़ किया, बाद में स्टोव जलाया और चाय बनाई । उसे दूरे में रखी और चल पड़ी, सुवेश के कमरे की ओर । अभी वह बीच रास्ते में ही पहुँची थी कि वह चौक पड़ी । ठंडी साह उसके मुँह से निकल गयी और व्यथाजनित झुला की रेखा बिजली की तरह उसकी छाँखों में चमक कर बुझ गयी । उसने झटके के साथ अपनी गर्वन हिलायी और अपने कमरे में आकर चाय पीने लगी । चाय के बाद उसने कुछ ताजगी का अनुभव किया । उसने उठकर स्नान किया और चुपचाप बिस्तरे पर लेट गयी । उसका मन वेदना के साथ-साथ सुनेपन से भर गया । वह सुना-पन उसकी आवा के सातो समुद्रों को भी गया और वह निर्जीवि-सी पड़ी रहती । सूर्य क्षितिज के होठों का रक्त पीकर भाग रहा था । किरणों की की माटी फसारेँ लोहे की सलाखों के बीच से आकर अमिता की पीठ पर फँस गयी । उनकी तपन ने उसके मन के सुनेपन को तरसुस्थिति से भर दिया और वह दरवाजा बन्द करके वापस बैठ गयी ।

घुँघलका कमरे में छा गया । पंखा बन्द था । श्रुंगार-मेज पर अमिता का सुवेश के साथ लिखवाया गया चित्र था । शायी के दो महीने बाद और आज से प्यारह साल दस महीने पहले का । इस विगत वर्षों में अस्सका जीवन सुलगती धुँव लफड़ी की तरह बीता । जलसा हुआ, धुँका हुआ, ठंडा हुआ, और नतिमान । सुवेश ने अभी उसे प्यार नहीं किया । प्यार क्या, उसमें समझौते की ही नीति को नहीं अपनाया । वह उससे क्षण-क्षण, पल-पल छोटी-छोटी बात को लेकर झगड़ा कर बिगाँ करता था । झगड़े के रूप भयानक होते हैं । अमिता की सास बीच में था जाती

और वह बात को बिना समझे-झाने अमिता की सात पीढ़ी को कोस देती । अमिता अपने क्रोध से घुटते मन को भाँसू बहाकर ममका लेती । दीवार पर धूक कर चली जाती । उसकी गहरी घृणा से उसकी क्रोध की भावना तिलमिलाती और उसका गन हिसक होकर उस पर झपटने को आशुर हो जाता, पर वह दीवार में सिर टकराकर रह जाती । वह अपने दोनों हाथों से अपने सिर को पकड़कर झिझोड़ बेसी । शिथिल होकर बैठ जाती । रोती रहती, बिजलती रहती । उसे लगता बुद्धि के रूप में उसका कोई भरितत्व नहीं है । बुद्धि को जो स्नेह-सम्मान मिलना चाहिये, वह उसे नहीं मिला । उसे लगता वह एक तरणी है, यूना के सागर में लहरो के मध्य डगमगाती ।

बाद में बात गाली-गलौज तक सीमित नहीं रही । कभी-कभी भुवेष उसे पीट भी देता था । तब घर का वातावरण विचारत हो जाता और नारणीय रोदन में अमिता का मन अपने आपसे हलती यूना कर बैठता था कि वह आत्महत्या करने के लिए प्रेरित हो जाती थी ।

दिन गुजरे । रातें चाँद की गोद में अनत प्यार को बगाती हुई चली गयी । ग्रहण बनवनों में बँभा उसका मन पति और साम में यूना करती भी प्रतिरोध करने में असमर्थ रहा । लेकिन यह सत्य था कि उन दोनों में स्नेह और अपनत्व नहीं था । इस पर भी भुवेष की सावध-कताओं की पूर्ति वह अभिप्राय से करती रहती थी । उसे महसूस होता था जैसे वह एक बटिया क्लिप्त की बेवसा है जो रोटी-कपड़े के पीछे अपने तन का सौदा करती है ।

×

×

×

सास में दीपहर के ठलते-ठलते घर में महाभारत शुरू कर दिया । वह एक अतुर आसूस की तरह भुवेष के 'वैरागटी-स्टोर्स' में गयी । भुवेष बहुत व्यस्त था । बाप के समय से चली आ रही मूढ़ तूफान आजादी के बाद और भी फली-फूली । काफी आग थी । माँ को देखते ही वह सारा मामला समझ गया । उसने अपने कमरे में सिगरेट का कल्ला खींचकर माँ

को इतना ही कहा, "मैं जहर खाकर मर जाऊँगा। तेरी वह टायन है, मनु मेरे रक्त की बूँद-बूँद पी जायगी। क्या तुम्हे संसार में दूसरी लड़की नहीं मिली थी जो इन्स हठी और शैतान की खोजकर लायी। 'बुप क्यों है ?'...बोलती क्यों नहीं ? तुमने मेरी जिन्दगी को तबाह कर दिया।"

"आखिर बात क्या है" उसने समझान बनते हुए कहा। इस समय उसकी मुद्रा निरालस सहज थी और विस्मय से भीड़े टेढ़ी हो गयी थी।

"बात क्या हो सकती है। वह रात है न, मुझे जितना नहीं रहने देगी। बुला-बुलाकर मारेगी ! पर मैं अब जरूर दूसरी भावी करूँगा।"

जो तुरन्त भाँप गयी कि मामला सहीन है। अतः उसने अपने बाप को मिलकुल समझान और निर्दोष बना लिया। उसने यह भी स्वीकार किया कि अगर उसके बाप की अतिम इच्छा का ध्यान न होता तो वह यह रिश्ता कभी नहीं करती। अन्तः कायस्थों में लड़कियों का कौम-सा अभाव है ? यह तो ठहरी मैट्रिक। एम० ए०, बी० ए०, पास भी एक हजार लड़कियाँ मिल जाती हैं। और उसने अमिता को भी भर कर गालियाँ दीं। गालियों के कारण वह अपने बेटे की थोड़ी सहानुभूति प्राप्त कर रही थी। उसका गुस्सा थोड़ा ठंडा पड़ गया और उसने उदास स्वर में कहा, "मैं उसके रहते घर नहीं जाऊँगा।"

"वर क्यों नहीं आयेगा। वर उस भगड़ाबू का नहीं, मेरे पति का है। हाँ, तुम उससे बातचीत मत करना।"

सास ने वहाँ से जीटकर अमिता को खूब जली-कटी गुनायी। आज अमिता भी अड़क उठी। वही जूला फूट पड़ी और अब सास ने उसे भगड़ाबू कहाँ, तब अमिता अपने हाथ का गिलास जमीन पर पटककर बोली, "भगड़ाबू मैं नहीं, भगड़ाबू है आपका भाइसा।"

"मेरे दो सात पीढ़ी में भी कोई भगड़ाबू नहीं था।"

"और मेरी बीवड़े पीढ़ी में भी कोई सीखे बोल बोलने वाला नहीं जन्मा।"

"यहने दे, रहने दे। क्या तेरे बाप ने तेरे चाचा को मकान के झगड़े

के लिए नहीं पीटा था ?"—सीधा और सच्चा आक्षेप था। तीर की तरह अमिता के हृदय पर लग गया। उसके अन्तः में तूफान उठ गया हो। पीड़ा-मय क्रोध था। वह फुफ्फुकारती हुई बोली—मेरे बाप ने लाख मेरे आधा को पीटा हो पर तुम्हारे पति ने तो अपने भाई को जहर देकर मारा, ताकि वह सम्पत्ति का बँटवारा न करा सके।"

तीर ने भी भयानक ये शब्द अग्नि-बाण सम थे। सास भारती नीच उठी—“तुप रह भूँहफटी !” और बात निश्चल-सी खड़ी हो गई। उराका स्वर अचकछ हो गया। पाप की छाया से पुतलियाँ भयानक लगने लगीं।

अमिता बीमार पर नजरें जगाए खड़ी थी। सास की मुद्रा कितनी भयंकर थी। वह उसने नहीं देखा। वह सिर्फ इतना जानती थी कि उसकी बात ने सास को परास्त कर दिया। सास की बोधती बन्द कर दी है। उसने ग्रहम् से अपनी सास की ओर देखा। उसके अधरों पर अमायास ही कुटिल मुस्कान विकर गई। उस मुस्कान ने आहुति में भी का काम कर दिया। सास की मनःस्थिति डीवाखोल हो चुकी। वह अपना पाँव पटककर चिल्ला पड़ी—“दाँत निकालती है बेव्या की तरह ! बेवाम, पवलमीज !”

“सखी बात कहवी लगती है।”

वह हवा की तरह अपने कमरे में आ गई।

उसकी सास भारती पत्थर की तरह खड़ी रही। वह अपने मन की निकट गालियों को बचान तक नहीं आ सकी। उसकी चेतना को उसके ही अन्तर की शक्तियों ने दबा दिया। वह पागल-सी, गुँगी-सी लड़प उठी।

थोड़ी देर के बाद वह अमिता के कमरे में गई। अमिता महरी नींद में सोयी थी। उसे लगा कि यह एकदम बोंगी है। इतना आग देने के बाद ऐसी महरी नींद। आधमी बेचनी के मारे सो भी नहीं सकता। वह नीचे उतर आई।

साँभ का मठमैला आँचल फैल गया। अमिता आज अपने कमरे से नीचे नहीं उतरती। वह अभी तक सोई हुई थी जैसे आज उसके मन का विपुल सघर्ष स्वप्न हो गया है। पूरे युगान्त के बाद आज वह सुख की नींद सोई है। वर्षों से उसके बड़े मन-मन को सच्चा विश्राम मिला हो। कोलाहल-भरी भीतरी स्वसृष्टि की नीरवता प्राप्त हुई हो।

भारती बड़ी देर तक उसकी प्रतीक्षा करती रही। मौकराभी ने साँभ के कार्यक्रम की प्रारम्भिक तैयारी कर ली थी। प्रारम्भिक तैयारियों के पश्चात् अमिता महाराजिन के साथ रसोई में प्रवेश कर जाती थी। सारा खाना बनाती थी। पति को गर्म फुलका खिलाना उसका धर्म था, चाहे पति रात को बारह बजे ही क्यों न लौटे। इसके विपरीत भारती खाना खाकर लौ जाती थी। वर्षों से उसने गृहकार्य में तनिक भी सहयोग नहीं दिया था। आज जब अमिता को नीचे उतरते नहीं देखा तो वह कुछ अचरार्ह, क्योंकि महाराजिन भी नहीं आई थी। एक बार वह फिर ऊपर गई पर अमिता को गहरी नींद में सोया हुआ पाया। उसका मन आशंकित हो भर गया। कहीं अमिता ने कुछ खा तो नहीं किया। उसने सहमते-सहमते अपने चाएँ हाथ को आगे बढ़ाया और उसकी नाक के आगे रोक दिया—। नाक से गर्म साँस आ रही थी। उसने इतमिनाल की साँस ली। नीचे आकर वह बैठ गई। जैसा कि हुयेसा अगड़ा होता था और साँभ के कामगमन के साथ ही वह झकड़ा समाप्त हो जाता था, पर आज स्थिति भिन्न थी। अमिता नीचे उतरने का तास भी नहीं ले रही थी। साँभ का आँगन और सहारा हो गया। चरों के ऊपरी हिस्से धुँधलक के में जो-ते गए। तब भारती का दहा-गद्दा धँस जाता रहा। वह झूले का ताप बरस भी नहीं सह सकी। भल्ला पड़ी। भवाला की कौपती पर छाइयों में उसकी आकुलता स्पष्ट भलक रही थी। बाहिर वह बाहर निकली और उसने काँच के गिलास को जोर से पटककर गिरा दिया। गिलास के टूटने की आवाज से आँगन गूँज उठा। टुकड़े छोटे-छोटे रूप में बिखर गए। किन्तु अमिता नीचे नहीं उतरती। वह भीखें मसती हुई

बाहर आई। जापरवाही से उसने नीचे की ओर देखा और फिर इत-  
मिनान से कमरे में आकर वापस लेट गई।

भारती का मन नहीं भावना से व्यक्त हो गया।

“आज रंग बदला हुआ है।” उसने मन-ही-मन कहा, ‘हाँ, तो  
होता रहे। मैं इसका भाषा ठीक किए बिना बोके ही रहूँगी। आज  
फैसला होकर रहेगा।’

वह काम करती रही। सुबेस था। तब तक उसका सारा शरीर  
पसीने में भीग गया था। प्राण के निरन्तर ताप के कारण उसके मुँह  
का रंग लाल की तरह हो रहा था।

“नौ, अमिता कहाँ है?” सवा की तरह उसने पूछा। क्षण-भर के  
लिए वह अभ्यस्त प्राणी की तरह झुल गया था कि आज का भगवा  
सवा की अपेक्षा बहुत गम्भीर है। फिर उसका मस्तक संकोच से झुक  
गया। उसने अपने आपको बचाने के हेतु कहा - “कल से महाशक्ति से  
जाना पकवा लिया करो। मैं उसके हाथ का जाऊँगा।”

वह आज अपने कमरे में नहीं गया। नीचे ही कपड़े बदलने लगा।  
जाना उसने सिर्फ माँ के मन को कष्ट न पहुँचे इसलिए बोझा लाया।  
बाव में वह सोने के लिए अलग कमरे में चला गया। वह सभी विस्तार  
पर लेटा ही था कि वह सोचने लगा कि उसे अमिता को सताने में क्या  
आनन्द मिलता है? हर रोज जड़ता है, हर रोज उसे प्रेम करता है।  
जबकि उसके मन में कुछ विकृति है, किसी को सताने में उसे आनन्द की  
उपलब्धि होती है? बेचारी अमिता! सच, उसके बिना मैं रह भी  
नहीं सकता।

सभी अमिता ने उसके कमरे में प्रवेश किया, अमिता के मयम  
प्रशांत थे और उसके चेहरे पर सवा की अपेक्षा आज अपूर्व पैरों व  
गंभीरता, विराज रही थी। एक ऐसा अनोखा आसोक जो अनुष्ठ के  
आन्तरिक आनन्द का प्रतीक हो सकता है। वह उपवास बैठ गई। उसने  
आहिंसे-आहिंसे कहा—मैं आज तुम्हें स्पष्ट रूप से कहने आई हूँ

एक बात ।

सुवेश ने प्रश्न-भरी दृष्टि से प्रमिता की ओर देखा ।

—मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ । मैंने भरपूर प्रयास किया, शायद यह प्रयास आपकी ओर से भी हुआ हो, किन्तु एक युग के बाद परिणाम यह निकला है कि हम आपस में एक सुखी सम्पत्ति नहीं बन सके । मुझे तुम पसन्द नहीं हो और तुम्हें मैं । कारण है मन की दूरी । मन की दूरी मन से ही भरी जा सकती है । पर हमारे मन की स्थितियाँ ऐसी रही कि वे दोनों जेल की पहारखोरी में बन्द हैं और मजबूरी के कारण हैंसते-रोते हैं, दुनियावारी निभाते हैं । अतः अब मैं सदा-सदा के लिए आपको छोड़कर जा रही हूँ । घुटन और भूख के डर से मैं ऐसा परवश जीवन-यापन नहीं कर सकती । इससे अच्छा है कि मैं किसी तरह उस एक क्षण को भी प्राप्त करूँ जो मेरे समस्त नारीत्व-तत्तीत्व को सुख-संतोष पहुँचा सके । जीवन बहुत बड़ा है और जीने के बायरे भी अनेक हैं । पता नहीं, इस बन्धन-मुक्ति की भावना और यह अदम्य साहस भुक्तों प्रायः से वर्षों पहले सुहागराज के दिन क्यों नहीं आता ?...मुझे चाहिए था कि मैं आपसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद अग्नि के महामंत्रों की साक्षी में सम्पन्न अनुष्ठान के तुरन्त बाद ही कर लेती ताकि मेरे जीवन का एक युग व्यर्थ नहीं होता । और, अबसे जागे, तभी सवेरा । हाँ, मैं आपको विदनास दिनाती हूँ कि मैं आपकी प्रतिष्ठा पर कोई कीचड़ नहीं उछालूंगी ।

सुवेश बैठ गया । उसका ललाट पसीनों की बूँदों से चमक उठा ।

उसने इतना ही कहा, "युग...युग यह..."

—मैं ठीक कहती हूँ । यह बन्धन, यह सतीत्व-नारीत्व का नारा व्यर्थ है । व्यर्थ है, परित्रवान बनकर आत्मा की सभी आशाओं व वृण्णाओं को मारना । आखिर पाद सब क्यों, किस लिए ? आखिर हर कोई सुख चाहता है और सुख दोनों के समन्वय बिना नहीं । सुवेश थाई ! शब्दों-मन्त्रों के बन्धनों की सार्थकता ही सही है जब हमारी आत्माएँ तृप्त हों । मैं सभी आ रही हूँ । आप मुझे सहजता से मुक्त सकते हैं । शादी भी कर सकते

है क्योंकि मैं भी ऐसा ही निश्चिन्ता कदम उठाऊंगी। नमस्ते !”

एक सूटकेस के साथ अमिता धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर गई। सुवेश को लगा, पूरे एक युग के अत्याचारों का बदला अमिता ने उससे ले लिया है। उसे पराजय ने बी है। यह दौड़कर बोला, “नहीं अमिता, नहीं तुम मत जाओ।”

पर अमिता नहीं रुकी ! “मैं जाऊँगी, आज से तुम्हारा मेरा रिश्ता खत्म !”

“पागल न बनो ! अमिता ! मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, देखो, पति-पत्नी का झगड़ा चलता ही रहता है। तुम तब का ताड़ न मनाओ।”

“मैं इस जीवन से ऊब चुकी हूँ। मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ।”

‘पर मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा। अमिता, अमिता...जोग क्या कहेंगे, तुम्हारी बीबी तुम्हें छोड़कर चली गई। भाग गई। मैं किसी को अपना मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा।

“और मैं भी इस तरह का पीड़ामय जीवन नहीं जी सकती।”

वह बोले बालक की तरह अपना अपराध स्वीकार करके बोला—  
“पता नहीं, मैं तुमसे झगड़ा क्यों करता ? दरअसल मैं धमिया हूँ। तुम्हें...एक बार...सिर्फ एक बार ! आज मैं डर गया हूँ। अमिता...।—  
वह कुछ बककर बोला—ये झगड़े हमारे जीवन से महत्वपूर्ण नहीं हैं। बिराट जीवन के ये अच्चे-बुरे बिन्दु हैं जो हल्के-हल्के झीकों से भी सूख जाते हैं, भिंट जाते हैं।”

और सुवेश ने अमिता के हाथ को मजबूती से पकड़ लिया।

सुधा मुस्कुरा पड़ी। सपकी समझ में नहीं आया कि वह भावनी किस तरह का है ? वह घर की सीढ़ियाँ वापस चढ़ती हुई सोच रही थी कि द्वेषता के बाद इसनी दोस्ती क्यों ? क्यों ?...एक अज्ञात प्रश्न उसको मन में सफाई की तरह बह्राने लगा।



## एक सीमा

१

खाजाने 'कोर्टगेट' से बाहर निकलते ही भीड़ का ज्वार-सा आ गया। कारण समझते देर नहीं लगी। रेल का फाटक खुला होगा। जब भी समुन सामने लेकर आता है, यह बन्द ही मिलता है। बस-गन्धर्व मिगट तक खड़े रहते या साइकिल को कंधे पर लाद कर बड़ी कठिनता से उग धोर जाओ। कभी-कभी बड़ी झुल्लाहट होती है किन्तु आज मैं समुन लेकर नहीं आया। मैंने भरी टोकरी वाली माफिन की प्रतीक्षा की और न मैंने छावला भरी भण्डार की राह देखी। आज मैंने बीराहे पर पानी की पखाल का भी इन्तजार नहीं किया। बस, भट से साइकिल पर बैठा और सपाट से पैदल जुमाता हुआ चल पड़ा।

और आज मुझे फाटक खुला मिला। भीड़ ने बचने के लिए मैं एक पान की दुकान पर ठहर गया। जहाँ जाता है इसलिए पान नहीं छूटता। हालाँकि बात पीले हो गये है। पान खाकर मैंने एक पल बड़ी पर दृष्टि डाली। सवा आठ हो चुके थे। मैंने अपनी रफ्तार और तेज कर दी। देखते-देखते मैं गिबबॉकर के अकाल के आगे था। अपनी आवत के अनुसार मैंने साइकिल की घंटी बजायी। दरवाजे की ओर बेसा तो एक छाया भँवरे में लोप होती साक्ष्य हुई। मैंने अनुमान से पुकारा, 'बिबबॉकर !'

गली में अँधेरा था। शिवशंकर के घर में अँधेरा था। मैंने निरुद्देश्य उस छोटी-सी गली में दृष्टिपात किया और तारों भरे आकाश को देखने लगा।

एक छोटी-सी लड़की आयी। बोली, 'काका घर में नहीं है।'

शिवशंकर के बेटे-बेटियाँ उसे काका ही कहते हैं। इस संभवान में उन्होंने शिवशंकर के भतीजों का अनुकरण किया है।

मैंने तुरन्त साइकिल को स्टैंड पर खड़ा किया और जरा गुस्से से बोला, 'और अभी भीतर कील गया था?'

लड़की चुप रही।

मैं तेज स्वर में बोला, 'मे आज उसको नहीं छोड़ूँगा। पूरा एक घण्टा हो रहा है। न ब्याज और न मूल। देखो वह किसनी देर चोरो की तरह घुमा रहता है। आज मैं भी प्रण करने आया हूँ कि रात भर यहीं पर खड़ा रहूँगा।' और मैं उसकी सीढियों पर बैठ गया।

दो-चार पड़ोसी आ गये थे। उन्होंने पूछ-ताछ की। मैंने उन्हें सी खरी-खरी सुनायी, कैसा जमाना आ गया है। अपने स्वयं से इसकी मरती हुई बीबी को बताया था, उसका फल यह मुझे यह दे रहा है कि अपनी सूरत भी नहीं दिखाता। यादिर मैंने ऐसे देकर कौन-सा गुनाह किया। एक तो ऐसा दो, दूसरे दुश्मनी मोल ली।'

पड़ोसी लोग झर-झर की बातें करके चले गये। मैं बड़बड़ाता हुआ वहीं पर बैठ गया और बीड़ी सुसगा कर पीने लगा। अभी उस 'पल भी नहीं बीते थे कि मुझे किसी के कदमों की आहट सुनाई पड़ी। आहट के साथ बालटेन की मद्धिम रोशनी। मैंने बाज-बूझकर उस ओर नहीं देखा। नीची गर्दन किये हुए बीड़ी पीता रहा।

'ठीकुराम बी !' परिचित तारी कंठ-स्वर सुनाई पड़ा।

'देखो भोलाई, आज मैं कुछ करके ही आऊँगा। मैं उसकी चाल-आयी खूब समझता हूँ। तुम्हें भेजकर वह अपनी बख्ता डाल देता है। किन्तु मैं भी यह फँसला करके आया हूँ कि उस 'चोई' से बाज बकर मिलेगा।'

भाभी ने विनीत स्वर में कहा, 'आप भीतर चलिए, यहाँ क्यों बैठे हैं ?'

मैंने साइकिल को तावा लगाया और भाभी के पीछे हो लिया। इतनी धीरे के उपरान्त भाभी पर मेरी पहली बार नजर गयी। मोटी और मंली साड़ी पर लगे तरह-तरह के छीटे, एक हाथ में सालटेन और एक हाथ में सातवाँ बच्चा। सूखा-सूखा शरीर और बंदे पाँव। वह मेरे भागे-भागे पाँवों को नाप-नाप कर चल रही थी और मैं कुछ खोया-सा कबरा उठा रहा था। भाभी का वह रंग और रूप मेरी माँलों के आगे राहसा लाज उठा। शिवशंकर की शादी में मैं भी शामिलित हुआ था। वही भूम-भूम से बरास गयी थी। पानी की तरह खपा खर्ब हुआ था। तब मैं और शिवशंकर सहपाठी थे। पाँचवी क्लास में पढ़ते थे। उम्र होगी यही तेरह-बीस वर्ष।

बार वर्ष के बाद उसका 'टीका' हुआ था। हम दोनों ने खूब मीन-मजे किये थे। दुल्हन को खू से भागे थे। दुल्हन और शिवशंकर की उम्र बराबर ही थी।

तब भाभी नारायणी के भंग-भंग से सौवर्य टपकता था। मोहल्ले की स्त्रियाँ उसका रूप-दर्शन करने के लिए जमा रहती थीं। हर कुँवारा गणगौर माता से यही प्रार्थना करता था कि ऐसी ही सोवली-भोवली बहू उन्हें मिले।

और शिवशंकर भी उस समय जाकास में लड़ता था। बाप की कमाई बहुत ही मुश्किल से रहती है। शिवशंकर पढ़ाई-लिखाई छोड़कर भाभी के रंग-रूप में रस गया। परिणाम यह निकला कि बाप ने उसे एक पंसारी की दुकान में काम-बंभा सीखने के लिए लगा दिया और उसे आश्वासन दिया कि वह जै-जै ही इस बंधे में निपुण होगा वैसे ही उसे पंसारी की एक दुकान मुलना दी जावेगी।

पर पिछि की थिड़म्बना कुछ और ही थी। सोख बीतते-बीतते शिवशंकर के पिता भी का हूँसे से बेहान्त हो गया और वह पहली जड़की

का बाप बना ।

तकदीर का पासा पलट गया ।

दस दिन मृत्युभोज करने के बाद शिवरांकर को मासूम हुआ कि उसकी बह के सारे जेवर बिक गये हैं और वह नितान्त गरीब हो गया है । पर उसने हिम्मत नहीं हारी । उसने अपने सेठ से साफ-साफ कह दिया कि वह अब उसका रोजगार खोज दे । रोजगार खुला सीस रुपये । वह उन्हें काया भी पर जैसा चमक है, उसके अनुसार वह पहला रोजगार-बहिर्नी इत्यादि में बाँट दिया गया ।

बाप की बरसी के बाद उसकी माँ और वह में झगडा होने लगा । बात-बात पर दू-धू और में-में । तब पास-पड़ोसियों ने उन्हें अलग घर में बसवा दिया ।

मुझे एकदम मीन बेलकर भाभी ने पूछा, 'क्या सोचने लगे ? भीतर झाँक कर चुपचाप ही बैठ गये ।'

मैंने चौक कर कहा, 'कुछ सोचने लग गया था भोवाई !' और मैंने बात के प्रसंग को बदलते हुए कहा, 'आपको मेरी सीख है । सब-सब कहिएगा कि शिवरांकर घर में हैं या नहीं ?'

'हे !' भाभी ने दृढ़ते स्वर में कहा । मेरी दृष्टि भाभी के चेहरे पर लम गयी । भाभी की आँखें मँस गयी थी । चेहरे की हड्डियाँ उभर कर उसके मुँह के प्रति अवधि उत्पन्न कर रही थीं । गोरे शालों पर खुनाई की जगह गहरे-गहरे दाग चमके लगे थे । एक बार मैं फिर सोच बैठा, यही वह युवती है जिसे मे रानी पद्मिनी कहता था । मेरा मन वेदना से भर आया ।

'उसे मेरे पास भेजो !'

भाभी भीतर गयी । पहले उसने एक दिया जलाया । साथ-साथ वह भीतर खाना बना रही थी । बाक में वह लालटेन को एक पीछे पर रख गयी । उसका बड़ा सड़का धा गया । चार बच्चे मनिहाल भये हुए थे ।

कोबी देर में शिवरांकर चोर की तरह गर्वन किये हुए खत से सीधे

उतरा। उसके सिर पर छोटे-छोटे केश थे पर चोटी गो-पद जितनी थी। शरीर दुबला-पतला था और मूँछें अभी छोटी-छोटी ही थी वरना वह अपने बौक के अनुसार मूँछों के 'फट' को प्रायः बदलता ही रहता है।

वह मेरे पास आ कर बैठ गया।

मैंने उसके चेहरे पर तेज निगाह जमा कर पूछा, 'क्यों रे, तेरी नीयत इतनी खराब क्यों हो गयी?'

वह चुप रहा।

'चुप क्यों है? बोलता क्यों नहीं?'

'क्या कर्कें टीकू, हाथ बहुत तंग है।'

'फिर उधार नहीं लेना था। बेनेवाला तो अपने रुपये जल्द मंगिया। सायद तुम नहीं जानते, आदमी एक वक्त तो कमाता है पर ब्याज भावों पहर।'

'मैं जानता हूँ, पर क्या कर्कें भाई! तुमसे कुछ छिपा हुआ तो नहीं है। यहाँ हम सबको पूरा भाटा भी नहीं पड़ता। पचहत्तर रुपये मिलते हैं। नो प्राणी! तुम्हीं बताओ, मैं क्या कर्कें? मैं शर्म के भारे बाहर भी नहीं निकलता। तुम्हारे सामने भी नहीं आया। यही शर्म और क्रिमक-सी लगती है।'

'इसलिए ही तो बड़े-युवकों ने कहा है कि सूबखोर बनने के पहले अपने बिल की पत्थर का कर लो, नाते-रिश्तों को झूल जाओ और नसुली के समय सिर्फ नसुली करो, चाहे कर्जदार के मुख से निवाला ही 'क्यों न छीनना पड़े।' मैंने एक लम्बी साँस ली और भक्-भक् करती हुई लाकटेन की बत्ती पर अपनी हठि जमा कर मैं फिर बोला, 'मैं सम्पूर्ण रूप से ये मीसियाँ नहीं अपना पाया। फलस्वरूप मैं एक सफ़्तन सूब-खोर नहीं बन सका। संज बात यह है कि मैं निम्नतम भविष्य में इस धंधे को छोड़ ही दूँगा।'

शिवकांकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह नीची गर्दन किये हुए बैठा रहा। एकदम मौन और निष्कल। पहले की अपेक्षा उसकी, गर्दन

बहुत पतली हो गयी थी ।

‘तुम कोई दूसरी नौकरी क्यों नहीं करते ?’ मैंने फिर कहा ।

‘बहुत चेष्टा की पर कोई जुगाड़ नहीं बैठा । पिता जी के मरने के बाद मेरी एक इच्छा थी कि मैं अपनी कोई दुकान खोलूँगा । मैं इस व्यापार की रग-रग पहचानने लगा हूँ । बड़ा ही लाभप्रद व्यापार है । भादमी भासानी से चार-पाँच सौ रुपये कमा सकता है ।’

‘फिर तुम दुकान खोलते क्यों नहीं ?’ मैंने खबो पर बनाव दिया ।

‘दुकान खोलना हँसी-खेल नहीं । कम से कम एक हजार रुपये चाहिए । मेरे पास एक दुकान का पूरा प्लान है ।’

वह मेरी बात सुने बिगाड़ी उठ कर भीतर गया । मेरा मन उसकी वयनीगता के कारण कुछ उदास हो गया था । सासटेन की भक्-भक् भव हो चुकी थी । बाहर ओंधेरा और गरम हो गया था । गली में कुत्तों के जंग ने बढ़ा हो-झुल्ला मचाया । लोग उन्हें काँट करने के लिए धीरे-धीरे जोर से ‘भिरें भिरें’ कर रहे थे । थोड़ी देर में कुत्तों का जंग समाप्त हो गया । मेरी दृष्टि उसके घर की दीवारों पर गयी । कच्ची और जगह-जगह पपड़ी उतरी हुई । मेरा धम छुटने लगा । इच्छा हुई कि यहाँ से चला जाऊँ ।

तभी उसके दो बच्चे मेरे पास आकर लड़ने लगे ।

मेहँए रंग ! पासे-बुलले ! गंदे ! गंदे !

कपड़ों पर जगह-जगह धारियाँ दी हुई । आकर झीले मुँहों से मुँहें निहारने लगे । लोग कहते हैं कि बासक देवता का रूप होते हैं पर मेरा मन उन्हें देखकर झुगा में भर आया । मैंने भाँखे तरेर कर उन्हें भीतर जाने का आदेश दिया । आवाज मुँह से इसलिए नहीं निकली कि यह एकदम अशुभता आनी जायेगी । बालक उदास-उदास से, सहमे-सहमे से भीतर चले गये । उनकी भाँखों से झुगा की जगह परवसता और कीलता थी ।

वही असह्य एकांत ।

भीतर से सम्झी चौकने की आवाज आयी। लगा कि भारी, रन्दी बनाने में व्यस्त हैं। तभी शिवशंकर हाथ में कुछ कागज लिये हुए आ गया। वह मेरे सम्मुख इतमिनान से बैठ गया और उसने लालटेन नीचे फर्श पर रख दी।

बोला 'यह मेरी योजना है। एक-एक चीज सिखी हुई है।...सब टीकू, मेरा एक बड़ा सपना था कि मैं पंसारीपने का काम सीख कर अपनी एक दूकान खोलूँगा। काका (पिता) ने यह आश्वासन भी दिया था। उन्होंने कुछ पूँजी भी जमा की थी पर उनकी एकाएक मौत ने मेरे डरावों पर पानी फेर दिया। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी। सोचा, थोड़े दिनों में कुछ पैसा इकट्ठा करके दूकान खोल लूँगा। देखो उसने एक कागज जोला। कागज पुराने गद्दीखारों का था। सायब बुजर्गों की कोई पुरानी गद्दी पड़ी होगी। उसने वह कागज दिखाया। उसमें बिड़िया की टाँगों की तरह टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा था—'शंकर भंडार'।

'यह मेरी दूकान का नाम रहेगा।' नीचे लिखा था—'फिराने का सारा सामान सस्ता और बढ़िया ठीक मूल्य पर यहाँ मिलता है।

'दूकान में कोठगेठ पर ही भूँगा, क्योंकि शहर का पुराना बाजार एक तरह से उठ-ता ही गया है। विक्री-बट्टा बंद-सा ही है। ग्राहक सब मीठा यहाँ आने लगा है। इसका एक कारण यह भी है कि शरणाभियों ने जाने-अनजाने सभी को उधार देना शुरू कर दिया है। ये लोग बड़े विश्वासहीन और आस्थावान हैं। कलेबा भी बहुत बढ़ा रखते हैं। सोल बेंते हैं, मान। और अक्षरज की बात यह है कि लोग देर-सबेर उनकी रकम पहुँचा भी बेंते हैं। सब टीकू, यह सब बहुत खपा कमाल है। मैं तुमसे अपने-बन्धनों की सीमा खींचकर कहता हूँ कि तुम मेरी ज़रा-सी मदद कर दो तो हम भागीदारी में अच्छा पैसा कमा सकते हैं।'

और तब उसने अपनी संपूर्ण योजना मेरे समक्ष प्रस्तुत कर दी। किसनी बोरिया मेवे की, किसनी बोरिया चीनी की और किसनी तरह

की ओर वस्तुएँ । मैं उसकी माकूल योजना देखकर विरिप्त रह गया । योजना वास्तव में अच्छी थी ।

‘कहो तुम्हारी क्या राय है ?’ उसने मेरी राय जानने के लिये पूछा ।

‘मैं इस पर जरूर सोचूँगा ।’

‘हाँ-हाँ जरूर सोचना । तुम मेरे बहुत पुराने और पक्के दोस्त हो । मेरी और तुम्हारी दौलत कटी रोटी है ।’

मैं कुछ नहीं बोला । मेरी अजीब स्थिति हो गयी । भाये ये नमाज पढ़ने और रोजा रखे पड़ गये । मैं खठने को आगुर हुमा, तभी उसने मुझे रोक दिया, ‘धन भूले क्यों जाओ हो ? रातों रातों अजीबाने ने बना लिया है ।’

‘नहीं, मैं अभी जाना नहीं जा सकता ।’

तभी भाभी आ गयी । आने की वह कुछ उलाहने से स्वर में बोली, ‘हम गरीबों का जाना इन्हे अच्छा नहीं लगेगा ?’

मैंने व्यग्रता से विनम्र स्वर में कहा, ‘नहीं नहीं भोजार्ड, ऐसा मत कहो, मुझे एक-दो जगह बसूती करने जाना है । व्यापार में घेर नहीं चलती । धूँके कि गये, फिर आगामी दो महीने तक नहीं मिलाना ।’ दर-असल मुझमें नहीं की गदगी के उन सबके प्रति एक अकस्मिकी उत्पन्न कर दी थी । भद्रगी और चुटन । कितना रही बना होगा रातों रातों न जायकेदार मसाने होंगे और न जिबुद्ध बेबी थी । मैं खुले पहनने लगा ।

भाभी ने हाथ जोड़कर बड़ी दयनीयता से कहा, ‘आप इनकी धर्ज पर जरूर ध्यान देने । यह ईमानदारी से व्यापार सौभालेये । आपके माथर में मैं कुछ दंडे निकल भी जायेगी तो कोई धर्ज नहीं होगा, पर उधे धूँकों से हमारा गेट जरूर भर जायेगा ।’

‘आग भरोंसा रखे, मैं इसे छोटी-मोटी बूकान करवा दूँगा ।’ मेरे मुख से, उनकी गिरी धूँक से प्रभावित, न आहत हुए भी यह भाव्य निकल गया । यह मेरी धारणा के विरुद्ध उसकी गरीबी की विषय थी । मैं वहाँ से बाहर निकलने लगा ।



एकाएक भाभी को उल्टी हुई। वह नाली के पास बैठ कर कं करने लगी। मैं झूठे खोलकर उसके पास सड़ा हो गया। जबकियाँ उसे बड़े भयानक रूग से आ रही थी। जगता था कि उसका कलेजा बाहर आ जायेगा। शिवदांकर उसकी पीठ पर हाथ फेर रहा था।

मैंने पूछा, 'क्या हुआ भाभी को एकाएक ?'

भाभी जल्दी-जल्दी कुत्ते करके भीतर भाग गयी। जाते-जाते उसके पोड़ित चेहरे पर मैंने सज्जा के भाव बंसे।

'क्या बात है, शिवदांकर ?' मैंने उससे दुवारा पूछा।

बहु संकोच से गड़ता हुआ बोला, 'जब इसके पेट में कच्चा होता है तो यह बेचारी अच्छी तरह आ भी नहीं सकती। इसी तरह की उल्टियाँ इसे होती रहती हैं।'

'लेकिन...?' मैं बिस्मय से स्थिर का स्थिर रह गया।

'क्या कहें ? ईश्वर की सारी मेहरबानी मुझ पर ही है।'

'फिर तुम्हें अपरेमन करता लेना चाहिए।'

'हर बार गोवता हूँ पर भ्रष्टों के सारे दग भारने की भी फुरसत नहीं मिलती है। तुम कुछ घर का धंधा करवा दो तो जीवन को भी व्यवस्थित करूँ ? अभी तो विभाग भी सही ढंग में काम नहीं करता। बस, तुमसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि मेरा सपना पूरा कर दो। तुम्हारे भतीजों की सौगंध है कि मैं तुम्हें हर सहीगे अच्छी रकम साथ की दूँगा। मैंने देखा कि उसकी भाँखें भीली हो गयी हैं। कसणा ने उसकी आकृति को अपने में आवृत्त कर लिया है।

इसके बाद वह हर दूसरे-तीसरे दिन मेरे पास आने लगा। मैं उसे टासता रहा। कभी मैं कहता कि विचार कर रहा हूँ, कभी कहता कि गिता श्री से पूछूँगा और कभी कुछ। वस्तुतः उसकी गरीबी के कारण मुझे उसकी इमानदारी पर शक हो गया था और मैं बार-बार इसी दृष्टि से सोचता था कि धनर घाटा ही गया तो मैं किससे पूँगा ?... और मैंने अंत में उससे साफ इन्कार कर देने का निश्चय कर लिया।

यह धटना दो माह बाद की है।

वह रात को अपनी ड्यूटी से लौटा था। मैं खाना खा कर रेडियो सुन रहा था। थका थका-सा था। अखि भारी-भारी थी। तभी शिव-दाकर ने प्रवेश किया। उसका आगमन मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने उसे बैठने तक तो भी नहीं कहा, फिर भी वह बैठ गया और कुछ देर तक सुपचाप रहा। यह मेरे सम्पर्क की प्रतीक्षा में था, पर मैं अशिष्टता की सीमा को ही लाँघ गया। कुछ भी नहीं बोला। नेत्र मूंद पड़ा रहा। सोचता रहा, कौंसा भूत मैंने अपने पीछे लगा लिया है।

वह ठिठकता हुआ बोला, 'बधा सबीयत कुछ खराब है।'।

मेने दृढ़ते हुए स्वर में कहा, 'हाँ, सिर में दर्द है।' हालाँकि मस्य यह था कि हल्-हो-हल्की थकान थी।

'आजार से एनासिन खा दूँ ?'

'कोई जरूरत नहीं। गुम माराम की जरूरत है।'।

'फिर मे कब आऊँ ?'

'सुबह।'।

तब चला गया और भुगह फिर आया। मैं पूछा कर रहा था। किसी पब्लिश ने मुझसे गिय जी के पूजन के बारे में कहा था। तो मे नियमित रूप से उनका पूजन कराया था। सुबह-रात उस गरिब को पैकजर गेरा मन कल्ला पडा पर मैं अपने प्रन्तस के आरोग-आवेश को बचा कर बोला, 'मैंने पिताजी से बातचीत कर ली है। वह कुछ नाराज होते हुए बोले कि उस आधमी के राश्वे मे काम करके क्या अपना 'विवाला' निकालना है। जाटा लग गया तो कौन भरेगा ? पचास ले गया था वह तो उसके देने की नहीं है।...अब तुम्ही कहो खबर, मैं क्या कर सकता हूँ ? व्यापार के रक को बन्धा नहीं जान सकता। कही जाटा लग गया तो हमारी बौल-बाज तक भी बंद हो जायेगी। फिर मैं पिता जी के शिक्षाफ कोई काम नहीं करना चाहता।'।

मेरी बातें सुनते ही उसका मुँह सफ़ेद हो गया और उराली आँखों

मे निराशा की बहुत गहरी परछाईयाँ तैर उठीं। उसके होंठ भी एक अजीब-सी चमक से दीप्त हो गये। वह क्षण भर मुझे दुख से जलती हुई तीखी नजर से देखता रहा और अंत में बिना कुछ बोले ही चुपचाप बसा गया। उसके चेहरे का विषाद असह्य और तीव्रतम था।

साँभ होते ही वह मेरे घर आया। उसके हाथ में पचास रुपये थे। मुझे उन रुपयों को देते हुए वह एकदम कुत्रिम हँसी के साथ बोला, 'आज मेरा सेठ बहुत खुश है। उसने मुझे पचास रुपये माँगने के साथ वे दिये। मैं चाहूँगा कि इन्हें तुम काका को देकर मेरी इमानदारी पर हुए शक को दूर कर दो।'।

मुझे इस प्रतिक्रिया की आशा ही नहीं थी। इन्हीं रुपये रकम के मिलने की प्रमत्तता एक सुदुर्लभ को कितनी हो सकती है, यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। मेरी आँखों में चमक धा गयी। मैंने अपने के उन रुपयों को ले लिया और गिनने लगा।

'ठीक, एक सिधी की बूकान बिक रही है। बड़ी मीके की बूकान है। आज बिककर सीधा तग कर लो।'।

'मैं तीन घंटे के करीब आऊँगा।'।

'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा, वह उस्ताह से बोला।

'मैं पक्का आऊँगा। तुम चिंता न करो।' मैंने उस्तास के साथ कहा। पर मैं उधर नहीं गया। इस आकस्मिक उपसर्ग के बाद मैंने तय कर लिया कि अब मैं उसे एक पैसा भी नहीं दूँगा। वही कारण था कि मैं फिर उससे बचते बचाता रहा। इस तरह कई दिन बीत गये। शिवशंकर ने अब मेरे यहाँ आना-जाना भी छोड़ दिया था।

किन्तु एक दिन अकस्मात् मैंने सड़क पर हथकड़ियों में बंधे हुए शिवशंकर को देखा। मेरी मनःस्थिति विचलित हो गयी। मैंने उसकी ओर साका नहीं और सीधा गरीब के पास गया। गरीब मेरा और उसका दोनों का भ्रम था।

मैंने उससे पूछा, 'अरे गरीब, 'शिवशंकर को हथकड़ियाँ क्यों डाली'

भयी है ?

‘चोरी के अपराध में :’

‘किसके यहाँ चोरी की ?’

‘अपने सेठ के यहाँ । पूरे पाँच हजार की । अचरज की बात यह है कि डुरी तरह से मार खाने के बाद भी रकम नहीं दे रहा है । कहता है कि मैंने एकग खर्च कर दी । देखो, हुआतु इसाम को कितना बदल देते हैं ? मुझे माझूम है कि यह शक्स इसना ईमानदार था कि चर के बर्तन बेचकर अपने भासागी को कुछ दिन पहले पचास रुपया बुकाकर आया था और आज...?’ गलेस पश्चाताप में बूझ गया । वह विचलित स्वर में बोला, ‘दरर वह बहुत डुरी था । आभिर हंसान करे भी तो क्या ? दुख की भी एक सीमा होती है । भावमी हार जाता है, परेशान हो जाता है ।’

मैंने रवाना होने का उपक्रम करते हुए कहा, ‘माई, किसी को यह पता नहीं है कि कल क्या होनेवाला है ? ईश्वर जो गुजारे, वही उत्तम है ।’

मैं अपने मनको घापस सदस्य बनाने की चेष्टा करता हुआ साहकिल पर चढ़ गया ।

~~~~~

## सनसोहनी

७

दिनांक ११-१०-५६ को रात्रि के ठीक ११ बज कर ५६ मिनटों पर मिस का चिर-सम्बोधन लिए मिसेज सथाकचित आलोचिका सनसोहिनी का देहान्त हो गया था। ठहरिए, देहान्त शब्द का प्रयोग गपत कर लिया है। सुधारता है—आत्महत्या कर ली थी। कारण भ्रमाल, क्योंकि उसने अपने पीछे किसी तरह का कोई खत नहीं छोड़ा था। सिर्फ मुंह लट्का होने पर पड़ोसी लोगों ने जाकर देखा तो उसकी लाश एक सप्पक से सटी पड़ी थी। कपड़े धस्त-धरत थे, उससे ऐसा लगता था कि जान निकलने के पहले वह बहुत लड़पी थी। उसका दम बड़ी मुश्किल से निकला था। पड़ोसियों के द्वारा पुलिस को खबर कर दी गई थी। पुलिस ने लाश को पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल भेज दिया। पुलिस ने उसके कमरे को भी अपने कब्जे में कर लिया था।.....उसके तीसरे दिन ही उसकी एक सास भायसी (सखी) का नेरे पास खत आया। उस खत में उसने कुछ रहस्यों का उद्घाटन करते हुए मुझे लिखा था—‘यह सनसोहिनी के राख की बातें हैं तुम्हें बता रही हूँ। तुम उसे एक वर्ष के बाद प्रकट करना, यह उसकी अन्तिम स्नाहिषा थी।’<sup>1</sup>

उमकी अन्तिम स्वाहिज को भन पूरा किया जा रहा है।

मृत की अन्तिम इच्छा को पूरा करने का हमारा एक तरह का मानवीय कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि खुनी व हल्लाखोर भी अन्तिम इच्छा को पूरा किया जाता है। फिर हमारी आलोचना न किसी का खून गहरी भिया, ऐसा गरा ब्याल है। पर उसकी खास भावभी मुझसे महत्त्व नहीं है। उमका कहना है "उसने एक परिवार का खून किया है, वह भी मने तरह का खून कि भावभी गर भी जाए थीर थलता-फिरता रहे। तुम नहीं जानते कि उमकी मौत का कारण, उन नन्हे-नन्हे मासूम बच्चों की वधूगार्ह है। उम भोली गली के बंद का अरार है जो बूबड में अपने गौगुधो को भुना कर अपने पति के कुल्म को रानसोहिनी के आरगण गहरी नहीं भी।" कुछ भी हो, उमकी पहचानी में आज आपके नामक पेन कर रहा है।

मेरा विश्वास है कि आप सग उस अशरुधित चिरकुमारी के किस्से में दिलचस्पी जरूर लेने। क्योंकि उम कितने आदर्श की धातें भले ही गंदे पर छुप छुप कर तोता-मेना के किस्से जरूर पड़ते हैं और उनमें थड़ी मस्ती केते हैं। हमारी दिवगत आलोचना की तोते-मेना के किस्से और फिरभी आते खूब मुनाया करती थी। बीबिए दास्तान ए मुहब्बत आफ रानसोहिनी का पहला और प्रस्तुत है।

अवपन का किरसा भी गहरी जानता और न ही मने जानने की कोशिश की। सिर्फ रानसोहिनी अक्सर खयाल और वममीन मूड में कहा करती थी कि मेरे बाप की दिली स्वाहिज थी कि मे वड-थिलकर एक सपुहस्थ पत्नी बनूँ। अपने और अपने पति के कुल के नाम को रोसन करूँ और उमकी इज्जत आवरु को बढाऊँ। पर जैसे ही वह बी० ए० में पहुँची जैसे ही उससे अपने बाप की समझा का खून कर दिया। कारण, जवाली नामक बीडी को मण खयाम नहीं लगा सकी। और उमसे एक परखून के व्यापारी के बेटे को अपना दिल दे दिया। ".....आमरे आराम गालिब साहब ने ठीक कहा है, 'इश्क पर और नहीं, यह है वह प्रालिब गालिब,

जो लगाए न सगे और बुझाए न बने ।'.....'फिर घरमानो के पहुँच सगे और उन दोनों की मुहब्बत परवान चढ़ने लगी ।'.....'सोता मैना के किरसे में जो वासना से परिलिप्त राजकुमारी और राजकुमार का जो छस्तेपित किस्सा जाता है, ठीक ऐसी ही शुरुआत थी उन दोनों की ।

सोहिनी उसके लिए बेताब रहने लगी । इतनी बेताब कि वह आधी-आधी रात को बेचैन अभिसारिका की तरह काशी साड़ी पहनकर हॉस्टल के पहुँचेश्वर को कुछ रिश्त देकर 'पुन-व्यापारी' के कमरे में आ जाती थी जहाँ वे दोनों पड़ते ताब रोसते थे, बाद में फिल्म के हीरो-हीरोइन की तरह पोज बनाकर सीने में देसते थे और भोर ने तारे के छगने के पहले ही राजकुमार राजकुमारी को अपने महल का शोर राना कर दिया करता था ।'.....'कभी-कभी दूकें मिजाजी रागगी चरम सीमा पर पहुँच जाती थी और राजकुमारी नीप की तरह उसके प्यार की मूँद को ग्रहण कर लेती थी ।

बीटे-बीटे राजकुमार के नाप को अपने बेटे के प्रेम के रहस्य का पता चला । एक दिन वह खुद आ धमका । उसने अपने बेटे को इस लाजायज कदम के लिए जोर से डाँटा और राजकुमारी को सम्मोहित करके कहा, 'ऐसी सूखली (भही) छोरी ही ससार में भी तुम्हारे लिए,अभी तो मैं एक-से-एक बढिया हजारों छोकरियाँ तुम्हारे लिये ला सकता हूँ ।'

राजा का मजीर (परकून की बुकान का रोकहिया) अपनी भूछों पर ताम देकर बोला, 'हाँ साहूजायें साहब, तीन सोळा बाढर और दो कपडों की बुकानों का एक बावसाह अपनी लवकी को आपके हज़ूर में सहर्ष हाजिर करने को तैयार है, मुझे बस आप हुक्म दीजिए ।'

राजकुमार मीन रहा । वह न जाने का अभिनय करता हुआ जाने को तैयार हो गया ।

सरोवर के किनारे सनसोहिनी ने अपने छसिया, रसिया को गीतों का निमन्त्रण दिया । वह ध्याया । सोहिनी ने भाँसु भर कर कहा, 'जानैमन, मुँझे सुन जाना, मैं तुम्हारे प्यार में पागल हूँ, मेरी जवानी

तेरी दीवानी है ।”

अपने बहिया रुमाल से सोहिनी के आँसुओं को पोछ कर किस्से का नायक पुनः व्यापारी बोला, “कसम है मुझे आकाश-पाताल की, कसम है मुझे भवानक सूचाता की और कसम है मुझे अपने अरमानों व मधुर प्रीत भरे क्वालो की अगर मेरे मन में किसी और सबकी का विचार भी आया तो ।”

और राजकुमार अपने बाप के साथ चला गया ।

सोहिनी गा उठी—तुम्हारे सङ्ग मैं भी चलींगी हो मैया जैमे पतंग पीछे डोर ।.....लेकिन वह गीत गीत ही रहा ।

और एक दिन उसी राजकुमार का एक जत उसके अपने दार के पास आया—“बार, बुरा जो करता है वह अच्छा ही करता है । मुझे एक कपनगर की राजकुमारी मिल गई है । उसके गोरे-गोरे गाल पर तिल है जिसके कारण मेरा दिल भाग्य हो गया है ।”

उस दिन यौनना आराकांता नेरी कहानी की अवसूरत नायिका सन-सोहिनी पागल हो उठी । वह पर्वत की घाटियों में शकुन्तला की तरह कदवा बिभाग करने लगी । उसके आँसू उसके भई गालों को चूम कर उसके आँखों पर अपने दाग छोड़ने लगे । वह बेवफा-बेवफा कह कर अपने प्रेमी को कोसने लगी, लेकिन उसके प्रेमी पर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई । उसके विलाप का असर शरणा भी नहीं हुआ कि उसके दीवाने-पन की सबर उसके प्रेमी तक पहुँचे । तब वह कुछ दिनों खामोश रही और बाद में उसने निर्णय किया कि—“प्यार बराबर वाशों से करना चाहिए । अमीर का बेटा गरीब प्रेमिका का कभी नहीं हो सकता ।” पुनः व्यापारी से प्यार करके उसने समय ही खराब किया ।

फिर परीक्षा हुई । नतीजे में सोहिनी फेल हो गई । छुट्टियों में वह दुखी रही और वह उस बटनी को भूल गई ।

दास्तान-ए-मुहब्बत और राजसोहिनी का पहला और अन्त ।

X

X

X



दास्मान-ए-मुहब्बत आफ सनसोहिनी का दूसरा दौर शुरू—

सोहिनी ने इस बार एक भावुक कवि को दिल दिया। यह कवि वास्तव में उसे सच्चे दिल से प्यार करता था। उसके मादमा-लोक में इस बदसूरत और दुय्यगी-पतली युवती के लिए 'हेसन' से कम महत्व नहीं था। कवि उसे अपनी पलकों में बसा कर रनप्लो के मसार में खोभा रहता था। यह उसे अपने सम्मुख बिठा कर कविता करता था। दूर-दूर फैंसी प्रकृति की पुरख पहाड़ी चाटियो में वे दोनों किलकारियाँ मारते हुए, भावों से और आकाश के भार एक नये ससार को बनाने की योजना बनाते थे।

कवि परम प्ररान्न था। उस बेचारे के जीवन में पहली युवती आई थी जिसने उसे प्यार किया था। हालाँकि वह कई बार मुहब्बत के दौर में हार का चुका था, पर इस बार उम्मीद से अधिक उसे सफलता मिल रही थी। यह उसके आत्मल के साथ में अपनी कविता-कामिनी को रात-रात भगवाइयाँ दिखाता था और उसकी आकर्षणहीन शक्तियों में प्यार का सागर नहरता हुआ देखता था।

यह सोहिनी को प्रसन्न रखने के लिए अपनी गुप्तको तक बँच कर उसे सिनेमा दिखाता था। उसे तकरीह करता था। उसे और उसकी शक्तियों को पिकनिक देता था। लेकिन सोहिनी के नखरे व परमाइने यह द्रविक दिन तक पूरी नहीं कर सका। राधारी ने कवि इससे बचाने बलाने लगा और सोहिनी को उस पर कुँकमाहट आने लगी। उसका विष उनके झूठे कहानों से छवने लगा।

"यह कैसा प्रेमी है! न यह अच्छे होटल में बाय गिला सकता और न यह डॉक्स में सिनेमा दिखा सकता?" यह उससे माराज रहने लगी।

कवि उसकी माराजगी पर फिल्म के हँसीके की तरह हँस देता था और एक बित्त—

"मिस्टर प्लस" फिल्म लगा हुआ था। सोहिनी कवि के पास आई।

कवि किसी वृक्ष के नीचे बैठा हुआ कविता की साधना में निमग्न था। तभी सोहिनी ने उसके ध्यान को भंग किया। कवि चीक कर बोला, 'हे मेरी प्रारण्यारी, आँखों की बुलारी, जग से न्यारी, मैं तेरी ही प्रतीक्षा में व्याकुल था। सुनो—ध्यान देकर सुनो—मैंने कितना सच्चकोटि का गीत भिखा है।

सोहिनी कुछ बोले, इसके पहले कवि ने गीत सुनाया शुरू कर दिया—

हे सुमुखि तेरा रूप अनोखा  
वह चन्दा-सूरज से थोड़ा  
तेरा धौवन सागर का ड्वार  
लहर-लहर में भवले भग प्यार  
तू मिहँसे तो सच कहता हूँ  
बहने लगे घामिनी का मोटा  
हे सुमुखि तेरा रूप अनोखा।

सोहिनी गीत सुन कर विच गई। यह आलोचना करती हुई बोली, 'न छन्द भीर न भाषा। मैं पूछती हूँ कि मोटा (नाला) को हिन्दी में बँसाने से क्या ज्ञान ? देखो कवि ने तुम्हारे विरोध में कभी लेख लिख दूँगी।' यही से उनका नया रूप प्रकट हुआ आलोचना का।

कवि उछल पड़ा, 'अरे बालिम ! तू मेरी कविता क्या, मेरे सुवच की भावनाओं की आलोचना करे तो' भी मैं कुछ नहीं बोलूँगा। तू अपने तीर तो चला।'।

"बकवास बन्द करो।" वह भठक उठी। कवि सह्य गया। दृष्टुर-दृष्टुर प्रश्न भरी निगाह से वह सोहिनी को देखने लगा।

सोहिनी फौजी अफसर की तरह दबदबे के साथ बोली, 'धुन्हे भाव मेरी भाषा भाजनी ही पड़ेगी।'।

उसका बतला कहना था कि कवि ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। सोहिनी का हाथ सर्दीना था। मजलम, उसमें पारी 'जैसी' कीम-जता नहीं थी। फिर भी कवि ने 'उस पर' धर्मता हाथ फेंक कर कहा,

‘‘तुम्हारे हाथ बिकने सगमरमर की तरह है। जी चाहता है कि तुम्हारे अंग-अंग पर एक ‘‘क्षीर चालीसा’’ लिख दूँ। यह रंग, यह रूप, सबसे प्रसन्न, सबसे भिन्न।’’

सोहिनी शर्मा गई। जैसे आम तौर से जब कोई युवती सजाती है तो वह और सुन्दर लगती है लेकिन सोहिनी का चेहरा क्षमति पर और भी बुरा लगता है। उसके फँसे हुए मोटे-मोटे होठ जब मुस्कान के कारण फँसे तो उपमा से परे हो गए। कोई माकूल उपमा उनके लिये नहीं थी।

कवि ने भावुकता से कहा, ‘‘एक दिन मेरे एक दोस्त ने कहा कि ऐसी सुगन्धी छोरी से क्यों प्यार करते हो? यह छोरी तो उसके लिये है जिसको कोई दूसरी छोरी न मिले। तुमने सोहिनी में क्या पाया?’’... जानती हो सोहिनी, मैंने उसे क्या जवाब दिया। यही जवाब दिया जो मजनू ने लीला के वास्ते दिया था : मैंने उसे कहा, ‘‘बरखुरवार उसे तू मेरी आँखों से बैस।’’ वस वह छुप हो गया। नशाकत और नफासत के परे तुममें जो प्यार है वह बहुत कम युवतियों में पाया जाता है।

कवि और भावुक हो गया। अनन्त आकाश को भाव-भरी दृष्टि देख कर वह बोला, ‘‘मैं रूप से अधिक गुरु को महसूस करता हूँ। तुम्हारी आत्मा बहुत खजमी है। सफेद पंखों वाले कबूतर से एक दम गहरी।’’ और तुम जानती ही हो कि मुझे कविता लिखने की प्रेरणा देने वाला दिल चाहिए। मेरी यही इच्छा रहती है कि जाय की व्याप्ति साथ में हो तुम मेरे साथ हो। मैं तुम्हें अपनी गोद में बिठाए ‘‘खैराम’’ की तरह स्नाहयौं लिखूँ।

सबसे अधिक सोहिनी कवि की अंक-आयिनी हो गई। थोड़ी देर कवि की मंत्रम वड़ी के पैङ्गुल्य की तरह हिचकी रही। भाव में उसने आँखें भी बन्द कर लीं। तब सोहिनी उसको प्यार करती हुई बोली, ‘‘मैं यह भली भाँति जानती हूँ कि तुम मुझे दिल से प्यार करते हो। लेकिन डियर, केवल प्यार में क्या नहीं। प्यार के साथ पैसा भी जरूरी है।’’

“क्या कहती हो सोहिनी ? प्यार के बीच पंसो को मत लाओ । प्यार पैसो से दूषित हो जाता है ।” कवि ने गम्भीरता से कहा ।

“आच्छा-आच्छा” उसने अपनी बांहि उसके गले में डाल कर कहा “आज तुम्हें मेरा कहना मानना ही पड़ेगा । बेसो, इन्कार न करना । बायबा करो ।”

“क्या ?”

“आज मुझे भी मेरी एक सहेली को सिनेमा दिखा दो ।”

“कौन-सा ?”

“मिस्टर वाक्स ।”

“यह तो बहुत ही रद्दी बेल है । एकबस बंडल ।” कवि ने नाक भी शिकोड़ कर पुनः कहा -- “किसना अपलील गीत है—गोरे-गोरे गाओगे ?”

“यह गाना रसमे नहीं है । उसमें तो एक बहुत ही उम्दा राँक एन रोल का गाना है—लाल लाल गाल” सोहिनी ने बड़ी दिलचस्पी के साथ मटक-कर कहा, “ऐसी मजेदार फिल्म को देखने से सिर का दर्द मिट जाता है । मैं तो ऐसे ही बिज देखना पसन्द करती हूँ ।”

कपि इन्कार नहीं कर सका सोहिनी की कठोर बातों के प्रत्यक्ष में कवि बँध गया । बाँहें भी इतनी सक्त थी कि अगर वह किसी जंगली पशु को भी उन्में बाँध लेती तो वह भी मुक्त नहीं हो सकता था । यह भी तय हुआ कि कम सिनेमा वाक्स में बेला जायगा ताकि कभी-कभार सोहिनी कवि का हाथ प्यार से धबा सके ।

लेकिन दूसरे दिन कवि सहोदय पैसों का प्रयत्न नहीं कर सके । कई दोस्तों के पास गए । दोस्तों ने सीठा उत्तर दे दिया । वह अपने एक सम्बन्धी के यहाँ भी गया, उसने भी वैसा ही उत्तर दे दिया कि आज-कल वह बड़ी संजी में है ।

फिर क्या करे ? भावा-भावा एक कबाड़ी के पास गया । उसे अपना टेबल-लैम्प बेचा । लेकिन छह रुपयों के टेबल-लैम्प के तीन रुपय मिले ।

बेचारा क्या करता ? इधर-उधर पैरों के लिए भागता रहा और अंत में घर में आकर निर्जीव-सा पड़ गया । उसे लगा कि उसके तन में खान नहीं है । बेचारे की दुःख वे कारण आँखें भर आईं ।

उधर सोहिनी सिनेमा-गेट पर पाउचर से अपने चेहरे को सफेद किए खड़ी थी । वह गम ही गम धुआँ-धुआँ हो रही थी । उसे इतना गुस्सा आ रहा था जितना गुस्सा दुर्वासा को शकुन्तला द्वारा उसकी आवाज न सुनने पर आया था । उराकी आँखों में चिनगारियाँ जलने लगीं । अगर उस समय कवि महोदय बिना पैरे लिए आ टपकते तो वह उसे अपनी क्रोध की ज्वाला से राख बना देती । जब सगय टल गया तब उसकी सहेली उससे मजाक करने लगी । उराके चासे पीने लगी ।

सोहिनी ने क्रोध से अपने होंठ काट लिए । अपने पाँव को पटकती हुई वह बोली, मैं उसे देख लूँगी । उरासे बात तक नहीं करूँगी ।

वह घर चली आई । उसे इतना दुःख हुआ कि उराकी आँखें भर आईं और उसने क्रोध में बात पीस कर कहा, “आम लगे ऐसे आशिक को ।”

उस दिन से मजलू की आँखों से सोहिनी की देखने वाला बायल-दिल कवि सोहिनी के लिए इस तरह तड़पने लगा जिस तरह फरहाद शीरी के लिए तड़पा था । लेकिन सोहिनी ने उस पर दया नहीं की ।

एक सिनेमा न दिखाने का नतीजा यह निकला कि दोनों का प्रेम टूट गया । कवि के दिल का दुग हो गया । वह खूने-तमसा लिए उम्मत्त-सा भाटियों में गीत गाता फिरता था । वह लीला के घर के अक्का निकालता था पर लीला उसे देखकर अपनी लिट्टक बन्द कर लेती थी । रास्ते में मिल जाती तो इस तरह नाक पर कमास डेकर सीर सी निवा-लती जैसे वह कोई बदहूँवार चीज हो । तब कवि ने वहींसे गीत लिखने शुरू किए । लेकिन गीत भी बेअसर ही सिद्ध हुए । आखिर कवि हार गया । उसने अपने लिए काव्यनिक प्रेमिका बनायी और उसने सोहिनी का कारा (पीछा) छोड़ दिया ।

परीक्षा समाप्त हो गई। मोहंगी कवि से बिना मिले हुए बसी गई। कवि का दिल बूढ़ कर टुकड़े टुकड़े हो गया। तब उसने बड़ी सुन्दर प्रभावशाली कविता लिखी—प्यार और पैसा। लेकिन पत्थर-दिल सोहिनी का दिल पानी नहीं छूषा और अंत में कवि महोदय प्रेमिका के अभाव में इस खुदगर्ज दुनिया के बहुत दूर चले गए जहाँ खेलाएँ सिनेमा न देखाने के कारण प्यार के पड़ते व्यर्थों को नहीं तोड़ती थी। जहाँ शोरियाँ साड़ी न बिलाले के कारण प्रेमी को नीची मजूर से नहीं देखती थीं। जहाँ प्यार से प्यार को तोला जाता था।

वास्ताम-ए-मुहब्बत ऑफ़ रानसोहिनी का तीसरा दौर सप्तम।

×

×

×

वास्ताम-ए-मुहब्बत ऑफ़ मनसोहिनी का तीसरा दौर शुद्ध।

यह बी० ए० पास हो गई।

पिता ने उसके हाथ पीले करने जाहे। सबबानों में विज्ञापन निकले। 'सुन्दर' की जगह 'सुखील' शब्द का विज्ञापन में प्रयोग किया गया। उसके भाए, पर उन्होंने उसे पसन्द नहीं किया। कोई कहता था, "बामन मया है मानो 'जियो-जियो रे लला'।" कोई व्यंग से कहता "रंग मीले कपड़े-सा है।" कोई कहता, "धै सोर्बूणा।"

परिस्थान यह निकला कि सोहिनी को किसी ने सपसी दीदी बनाना स्वीकार नहीं किया। बेबारी भीतर-भीतर बूढ़ने लगी। उसे रातों को नींद नहीं आती थी, और दिन को करार नहीं पड़ता था। अब उसे कवि का क्या आया पर कवि का कोई ठिकाना नहीं मिला। बाप भी उससे पीछे भुँह बात नहीं करता था। कभी-कभी ज़हूँ एकांत में रो छूटता था। आखिर उसने एक दिन हिम्मत करके कहा, "पिताजी, मैं शादी नहीं करूँगी। मैं आजन्म कुँवारी रहूँकर इकताब करना चाहती हूँ।"

बाप अकलाकर बोला, "तुम इकताब करना चाहती हो या मजदूरी में महात्मा गांधी बनना चाहती हो। मैं कहता हूँ कि तुमसे कोई भी शादी करने को तैयार नहीं होता।"

सोहिनी का मुँह खतर गया। उसके हृदय के मर्म को उसका बाप समझ गया और उसकी आँखें भी भर आईं।

इसके बाद सोहिनी ने मन-ही-मन कुंवारी रहने का तय कर लिया। उसने सोचा—'वह दुष्ट मर्दों के बच्चों की ओर देखेगी तक नहीं। वह पुरुषों को ठोकर मारेगी।'...तब उसने एक स्कूल में नौकरी कर ली। वह स्कूल में नियमित रूप से जाती थी। वहाँ अन्य मास्टरमिस्त्रों के पतियों और प्रेमियों को देखकर उसका मन हाहाकार कर उठता था। वह सम्भावित-सी होकर रात-रात भर छत पर घूमा करती थी। व चाहते हुए भी बरबस उसका ध्यान राहगीरों पर धरता जाता था और वह राहगीर की उपेक्षित नजर नहीं सह सकती थी। वह भीतर-भीतर जल जाती थी। और जब उसकी सहेली उसे अपनी बांहों में लेकर कहती 'मेरा महदूब मुझे इस तरह घूमता है, मुहब्बत करता है, कहता है, जलता है तो मुहब्बत में, तो बेचारी सोहिनी का मुख कबला से भर जाता था। स्वप्न में वह चौक-चौक जाती थी। वह करे तो क्या? करवटों पर करवटें। रात गुजर जाती थी और दिन निकल जाता था।

आखिर उसने अपनी प्रतिज्ञा में संशोधन किया। उसने यह सोचा, मैंने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी पर मैं प्यार तो कर सकती हूँ। लेकिन मुझे प्यार कौन करेगा।

तब वह प्रेमी की टोह में निकलती और गिराव होकर वापस आ जाती। वह अपनी सहेलियों के मित्रों में जाती-जाती पर वहाँ भी उसे गिरावा ही मिलती। जब किसी के नजदीक जाती तो बरक़िस्मती उसके सामने लंगी होकर खड़ी हो जाती और उसके शायन में नाकाम मुहब्बत के शायन जमक उठते और लोग उससे दूर हो जाते। कभी-कभी वक्त-बेवक्त उसकी पुरानी वास्तान-ए-मुहब्बत उसके कानों में पड़ती थी तब वह केवल रो पड़ती थी और हीनता से वह उस रास्ते से कई दिन तक नहीं गुजरती थी।

सुना है कोशिश करने पर जुदा भी भिन्न जाता है। तब सोहिनी

को प्रेमी न मिले, यह कैसे हो सकता है। अब की बार सोहिनी को एक प्रेमी मिले पत्रकार याने भ्रष्टचारनसोव। पत्रकार एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे और चादी खुदा भी थे—भ्रष्टारे-भ्रष्टारे। सरकारी निजापनों व भलेकमेलियों से जैसे-तैसे उनका भ्रष्टचार निकलता था। उन्नत चलती थी, इसलिए जवान सोहिनी को पाकर धन्य-धन्य हो उठे। पहले-पहले वे गुप्त रूप से मिलते थे। लेकिन प्यार कभी छिपता नहीं। वह प्रकट हो गया। तब सोहिनी ने अपने बाप व परिवारों से साफ कह दिया, 'वे मेरे एक भ्रष्टे दोस्त हैं। मैं उनसे ज्ञान-दान लेती हूँ।'

अब कोई उसके प्रेमी कुंठित जी की मातोयना करते तो वह विगड़ गार कहती थी, 'आप लाख कोशिश करें लेकिन आप, मुझ में और कुंठित जी के बीच कभी भी दरार नहीं आल सकते। हम एक-दूसरे को खूब समझते हैं।'

प्यार बढ़ता ही गया।

पहले बाबिक और बाद में कायिक।

एक दिन सोहिनी ने जबरारकर कहा, 'मेरी माँ...?'

कुंठित जी के नीचे की जमीन खिसक गई। जबरारकर बोले, 'क्या कहती हो?'

'ठीक कहती हूँ। हजार बार कहा, आत्मा का प्यार रखो।'

'लेकिन मैं यह समझता था कि जिस रबी में पुरुषत्व अधिक होता है, उसे इसका खतरा कम भी रहता है।'

सोहिनी भीख पड़ी, 'बन्ध करो अपनी शकवास को। मैं कहती हूँ कि कोई इलाज करो, कोई उपाय करो, कोई ट्रीटमेंट करो।'

कुंठित जी भी एक चरित्रहीन नर्स भावली थी। उससे अनुरोध किया गया और बच्चा गिरा भी दिया गया।

प्यार बापस नई बहार की तरह अंगड़ाई ले बैठा। बदनामी के काइए सोहिनी को भीकरी से निकाल दिया गया। मैं बाब सोहिनी की हिम्मत को भी देता हूँ—अब वह खुल्लम-खुल्ला कुंठित जी की प्रेमिका



बन गई। बाह्य रे कुठित जी, उन्होंने भी हक निभाया तो तहे विल से। उन्होंने उसे संपादिका बना दिया। सोहिनी का मुख्य काम था पत्र-व्यवहार करना। पुस्तकों की समालोचनाएँ करना। आलोचना के छिछले लेख लिखना।

कुठित जी उसमें तबलीन होते गए। वे उसके प्यार में इतने तन्मय हुए कि वे सारी की सारी इन्कम सोहिनी की फरमाइशों को पूरा करने में लगा देते थे। धीरे-धीरे उनका परिवार अभाव-ग्रस्त होता गया। जब अभाव की एक सीमा घाई तब उनकी बीबी अपना हक माँग बैठी। अधिकार को लेकर कुठित जी व उनकी बीबी में झगड़ा होने लगा और गुस्से में कुठित जी तीन-तीन दिन घर नहीं जाते थे। इस बीच मानवता पर लेख लिखने वाली सोहिनी कुठित जी के साथ गुनखरें उड़ाती थी। तब उनकी बीबी उनके मित्रों से कहती, पर कुठित जी की बीवानगी पर किसी की बात का कोई असर नहीं हुआ। वे सोहिनी की ओर बढ़ते ही गए।

कई बार उनकी बीबी सोहिनी के पास आई। इससे अपने बच्चों के अवश्य और अपने सुहाग के सुख की भीख मांगी, पर सोहिनी ने परधर की तरह कह दिया, “मेरा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हम दोनों भिन्न हैं। पत्र को अच्छा बनाने में लगे हैं।”

कुठित जी को सोहिनी से बड़े कायदे रहे। वह सप्ताह की इन्कम बढ़ाने के लिए खूब प्रयास करती थी। सोहिनी बड़े प्यार से परिचितों को लिखती ‘सप्ताह’ की हालत खराब है, आप इसके बीस ब्राह्म बना दीजिए। आपकी कहानी इस अंक में छप रही है, आपिक हालत बहुत खराब होने की वजह से मैं आपको प्रस्तुत अंक की बी. पी. ओ. भेज रही हूँ। भाई साहिब, मुझे उम्मीद है कि आप इसे ज़ुबान कर अनुपदीत करेंगे।’

इसके साथ ही साथ बड़े-बड़े भीतकार—कलाकार साहित्यकार की वह तन और मन से आवाजगत करती थी और उनसे आपसी ‘ज्ञान’ के रूप

मे होती थी । ..... मतलब यह है कि सोहिनी के आगमन पर कुठित जी को लाभ-ही लाभ दीखे ।

लेकिन कुठित जी के एक चचेरा भाई था । वह बड़े सहर में रहता था । और बहुत ही सम्पत्तिकोटि का साहित्यकार था । जब उसे इस अस्वरूप प्रेम का पता चला तथा अपने भतीजों की दुर्दशा का हाल माझूम हुआ तो वह भाया और उसने सोहिनी को समझाया । उसकी सच्ची व सीधी बातों से उम्फत की बीबानी सोहिनी का बीबा-ए-दिल जल्दी हो गया और उसने मुझे मे उरका अपना भी कर दिया । इससे उसके चचेरे भाई ने उसे कुछ कड़वी बातें सुना दी । सोहिनी की धार्मिकों में बदले की भावना जबक उठी और उसने चुपचाप उनके चचेरे भाई की पुस्तकों की ऊटपटांग आलोचना लिखी और कुठित जी को बिना कहे उनके ही अक्षरबार में छाप दी ।

फिर क्या था ? इस बीबागी दियोलिऐन से कुठित-बीबी का विभाग गर्म हो गया । वह सीबी व्यस्त भाई । सोहिनी सिगरेट का गोलाकार धुमा छोड़ती हुई कुछ लिख रही थी । उसने रोज-रूप धारिणी कुठित-बीबी को जैसे ही देखा, जैसे ही सिगरेट बुझाकर वह सामधान हो गई ।

कुठित-बीबी ने उसके समक्ष अक्षरबार पोंक कर कहा, तुम अपने आपकी क्या समझती हो ? यह मकवास मेरे देवर का कुछ नहीं बिगाड़ सकती । पर तुमने उसके करिबों को अस्वाभाविक बताया, मे उसके बारे में तुम्हें कुछ कहना चाहती हूँ । पहले मुझे तुम इतना बताओ तुमने जिनगी और उसके लोगों का कितना अनुभव किया है ? उनसे कितनी गहराई से बर्ह हो ? और तुम जैसी कच्ची व खोखली बुद्धि वाली आलोचिकाओं के लिए हर नई बात अस्वाभाविक और हट गया इष्टि-कोण कृत्रिम होता है । ..... और दूसरी भाषाओं वाले जो भी लिखें, वह तुम्हारे लिए आर्वाक बन जाता है । तुम अपनी हीनता को छीढ़कर स्वस्थ आलोचना करना सीखो ।”

सोहिनी विस्मय-सी कुठित-बीबी का चेहरा देखती रही । वह पुनः

भड़क कर बोली, "तुम समझती हो कि मैं केवला बच्चे पढ़ा करती हूँ ? शायद तुम्हें पता नहीं कि मैं गैट्रिक व साहित्य-तन् पास हूँ तथा मुझे साहित्य के अध्ययन का बड़ा श्राव है। मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ कि यह सब होंप के कारण हुआ है और तुम्हें हिम्मत बँधाने वालों को भी मैं जानती हूँ। एक है विदेशी कहानियों को चुराकर पाठको पर रीब गालिब करने वाला तैमूरगम और दूसरा लंछक व पत्रकार जो प्रतिभा पर नहीं, आत्मीयता व व्यापारिक मायारों पर साहित्यिक बर्ता हुआ है।" क्या आलोचना की है ! प्रूफ की गलतियाँ भी भापा की गलतियाँ बताना ! चरित्र अस्वाभाविक है ! जरा मेरी बात का जवाब दो ! क्या यह चरित्र अस्वाभाविक है ? तुम बी ए पाम लड़की हो, सम्पादिका हो, मानवता पर रोका लिखने वाली हो, तुम अपनी आत्मारोपना क्यों नहीं करती ! तुम अपने गिरेबान में क्यों नहीं देखती ? तुम्हारी जैसी आदर्शमयी नारी एक औरत की जिव्वागी में आग लगाकर, सात-सात मासूम बच्चों के पेट पर लात मार कर एक प्रौढ व्यक्ति से प्यार करे। मैं समझती हूँ कि ऐसा यथार्थवादी चरित्र प्रस्तुत करने वालों को कोई भी स्वाभाविक नहीं बसाएगा पर है तो रही ही ? क्यों ? तुम्हारी जैसी पत्नुर और प्रबुद्ध स्त्री सात बच्चों के बाप को प्यार करती है कि नहीं ?.....पर इस प्यार की उम्र बहुत कम है। स्वार्थ और पूँजी के आभार पर टिका प्यार चार दिन की पौषणी की तरह होता है। कभी न कभी मेरी सहिष्णुता, कभी न कभी इन बच्चों का स्नेह अपने बाप को पराजित करके ही छोड़ेगा!.....फिर तुम्हारा क्या होगा ?"

वह खड़ी भाई !

समाटा !!

सोहिनी को काटो तो खून नहीं। वह निर्जीव-सी कुर्सी पर लुबक गई। उसके मन में सुफान खड़ा हो गया। उसे लगा कि वह जो कुछ कर रही है, वह जलत कर रही है। उसे अपनी नैतिकता का यह धरातक नहीं बनाना चाहिए। आखिर उसके इस जीवन का अन्जाम

क्या होगा ?

और उसके समक्ष जम्हा अन्धेरा छा गया। ऐसा अन्धेरा जिसमें रोशनी की लकीर की तरह उसको अपना बिना मंजिल का रास्ता दिखा रहा था। .....तब रात को उसे सपने में उन सात बच्चों के उदास मुँह दिखते और चौदह माँओं की झुगा उसे अपने में डुबोना चाहती। ... और धुँधलके में बूझ में लिपटी एक दुबली नारी का पीला चेहरा दिखता, जिसकी भांग का सिन्दूर जहू बनकर उसके चेहरे को भीमत्स कर रहा था और पासमें वह कलम लिए खड़ी होती थी। .....बीरे-बीरे उसकी आत्मा में उसके अपने ही पाप भूँजने लगे। और एक दिन उसने सम्भावित होकर आत्म-हत्या कर ली।

पोस्टमार्टम के बाद भाखूम हुआ कि उसने जहर खाया था।

उसकी मर्ण्य में कोई भी विशेष व्यक्ति सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि वे उसे एक समझदार-सुशिक्षित स्त्रियाँ कहते थे।

मुझे उसकी गम भरी वास्तान-ए-मुहम्बत का अन्तिम दौर सस्मं करते हुए बड़ा ही दुख हो रहा है। सहानुभूति है, उस प्यार की प्यासी, गलतफहमी की बेगम सोहिनी के प्रति। अलबिदा। ● ●

## गिर्जे पर पथराथी दृष्टि

छोटा सा गकान ! सीलनसे सीवार पर एक जगह एक दाग सा पड़ गया था। और कहीं-कहीं पलस्तर के टुकड़े भी उतर गये थे, जिससे इंदें साफ दिखलायी पड़ रही थीं। उसकी बायीं ओर एक पुराना कलेन्डर टंगा था—ईसा-मसीह का—अज्ञान और अन्धेरे में धिरी धारमाओं को प्रकाश-दान देते हुए। दायीं ओर का बरवाजा पीछे के प्रांगन में खुलता था। प्रांगन के ठीक सामने दो कमरे बने थे जिनकी दीवारों का हरा रंग उड़-उड़ सा गया था।

अभी-अभी देजिन रसोईघर से निकली थी। उसके दोनों हाथों में एक बड़ी तख्तरी थी। तख्तरी में वो उबले भंडे टोस्ट और चाय थी।

उसने छुटनों तक फ्रॉन्ट पहुँच रखा था जिससे उसकी गेहुँए रंग की मांसल पिंडलियाँ साफ दिखलायी पड़ रही थीं और उसके मटमले पाँव एकदम नये थे।

यह बालाम को पार कर रही थी। अभी वह दो कदम ही चली थी कि उसके पाँव में काँटा चुभ गया। काँटा चुभते ही उसने यूँही रो लीक-सी निकल गयी। पर तख्तरी रखने की जगह न होने के कारण वह संतुलनी हुई भीतर घुस पड़ी।

“अरे ! तेरे पाँव के क्या हो गया ?” उसके माप ने पूछा।

"काँटा कुछ बचा है डेडी ।"

बाप ने उसे मेज खिसकाने से भदव ली और रैजिन ने अपने लम्बे तालूनों से काँटे को खींच कर बाहर निकाल दिया । तत्पश्चात् वह चाय बनाती हुई बोली, "यह सब बकरी के रखने की बजह से होता है । हजार संभाल कर 'पासा' साती हूँ पर काँटे बिखरे बिना नहीं रहूँगे ।"

"लेकिन बकरी का नाम भी..."

"पहले चाय पी लीजिये" उसने बात को बीच में काट दिया ।

रैजिन का बाप तन्मय होकर चाय पीने लगा । उसकी मुद्रा गम्भीर हो गई और उसकी फेंनी-रियर दृष्टि में सूनापन भक्तक उठा । बूढ़ा बाप हारा-थका, अपंग, सूखा-बुखरा । मरता या—जिन्दगी उससे भोहवश लिपटी पड़ी है । बाप को बड़ी देर तक मौन बैसकर रैजिन से नहीं रहा गया । वह मुँहे-मुँहे स्वर में बोली, "क्या सोच रहे हैं डेडी ?"

"सोच रहा हूँ, मैं मर क्यों नहीं जाता ? आबमी पृथ्वी पर भार होकर क्यों भीता है । उसके जीने का क्या मकसद हो सकता है ?"

"सज्ज की हर बड़ी साभिप्राय होती है डेडी ! जरा सोचिये न, इस संसार में मेरा मापके सिवाय कौन है ? कौन है जो मुझे प्यार-ममता देगा ?"

वह उदास ही हुई ही हँसकर बोला "अपंग अक्षर हूँ, किन्तु नावान नहीं हूँ । मैं सब समझता हूँ । बच्चा नहीं हूँ । तुम्हारे भीतर छिपे सूफान बुस और परेकानियों से मैं खूब परिचित हूँ । मैं जानता हूँ कि अब तुम्हें किसके और कैसे प्यार की जरूरत है । आह ! मुझे प्रभु ने क्यों जिन्दा रखा है ।" बूढ़ा निःशुक्ल भववा हो उठा । जो बूढ़े भाँसू भी झलझला पाये ।

रैजिन उठी । उसने बाप का मुख दूरकर कहा, "आप स्वयं परे-धान हो रहे हैं डेडी ! मनुष्य इससे अधिक खुशी क्या हो सकता है कि उसे भ्रष्टा भोजन, सुन्दर कपड़े और कर्तव्य पावन करने का पूरा धन-सर मिल जाय । मैं किसी पुत्रागी बेटी हूँ कि मुझे अपने 'डेडी' की

सेवा का गीभाग्य मिला हुआ है।”

बूढ़ा निरुत्तर रहा। वह जैसे खो गया।

“आप चाय पीजिये न?” रैजिन के स्वर में आग्रह था।

“नहीं।” पता नहीं क्यों मन हर चीज के प्रति उदासीन हो रहा है।”

“बेटी!” उसने अपने बाप के गले में बाहें डाल दी। उसके चेहरे पर वचपन की शोखी थी। बूढ़ा हँस पड़ा। वह पुनः चाय पीने लगा। वह कुछ देर तक लिफ्टकी के फटे पर्दे को देखता रहा जो निकलते धूर्य की फिरफ़ी को रोकने का असफल प्रयास कर रहा था। हवा का जोर का झोका आया। पर्दा बीच में से और फट गया।

“यह पर्दा बिराकुल फट गया है बेटी।”

“आप चिंता न करें, मेरी रेसमी साड़ी भी फट गयी है। मैं उसका नया गर्दा बना दूँगी। संयोग भी तो एक चीज होता है।”

“और हाँ बेटी, कल रॉबिन आया था।”

“क्यों?”

“जस इतना ही कहकर चला गया कि रैजिन आजकल मुझसे थोड़ी नाराज है।”

“वह झूठ बोल रहा था।”

“आयव।”

“आयव नहीं, सचमुच। वह आहता है, रैजिन उसके लिए अपने व्यक्तिगत को सारम कर दे। अपने आपको गार दे। अपने कर्तव्य और अपनी इन्सानिगत को छोड़ दे, वह मेरे लिए संभव नहीं।”

“यह सतकी ज्यादाती है।”

“कमजोरे पर सभी ज्यादाती करते हैं। रॉबिन न करे यह कैसे हो सकता है?” कह कर वह बाग के बर्तन लेकर वापस रसोईघर में चली आयी। वह रसोई की सफाई करने लगी। सभी बाहर ग्राइफिल का पन्टी बब जड़ी। पन्टी की टन-टन सुनते ही रैजिन के सारे तन में

नयीन स्फूर्ति जाग गयी। वह हठात् द्वार की ओर बढ़ी। उसकी धाणी पर रॉबिन शब्द भी आया पर आज उसने उसे प्रकट नहीं होने दिया। वह फिर सफाई में तन्नाय हो गयी। उसका मन बाहर पहुँच गया था पर उसने अपने आपको अत्यन्त व्यस्त बनाए रखा।

घाटी एक बार फिर बची।

वेदना की लकीर रैजिन के अन्तस को चीर कर छांत हो गयी। उसने स्वयं पर संयम रखा। वह कण्ठ से वर्तनों को निष्प्रयोजन ही गाड़ने लगी।

रॉबिन रसोई के दीवार के बीचो बीच आकर खड़ा हो गया। उसकी छाया का आभास रैजिन को हो गया था, किन्तु वह निश्चय बैठी रही—अपने को जय्यत किये।

“रैजिन !” उसने पुकारा।

रैजिन ने अपनी पलकें उठायीं। अपलक अर्धमरी दृष्टि से उसे देखती रही। उसने चाहा कि वह सदा की तरह भाव भी रॉबिन को अपनी नाहीं में भर कर उसके गुल पर सहस्र पुगवनों की वर्षा कर दे पर उसने अपने गग की अधीरता को जय्यत किये रखा।

“रैजिन, तुम्हारा नाराज होना ठीक नहीं है। तुम्हें मेरी बातों पर गम्भीरता से विचारना चाहिये। आशिर यह कब संभव हुआ है कि एक भरे-पूरे परिवार का बिगमेदार सदस्य अपनी पत्नी के कहने पर उससे दूर भागकर रहे। जरा सोचो न, मेरे पिता के दिल पर कितना बड़ा आघात जमेगा ?”

रैजिन ने उसकी बात का कोई उत्तर न देकर इसना ही कहा, “चाय पीओगे ?

“नहीं अभी ही पीकर आया हूँ।” कहकर वह दाखान में पड़ी स्तूल को उठा लाया और स्रक्ष पर बैठ गया।

“फिर भी एक कप पी लो।”

“जैसी तुम्हारी बर्छी।”



रैजिन बाय बनाने लगी। रॉबिन सिगरेट जलाता हुआ बोला,  
 “कल तुम सरोवर की पार्टी में भी नहीं आयी। लोगों ने मेरी बहुत मजाक  
 उड़ायी। आखिर तुम्हें मेरा इस तरह अपमान कराने से क्या मिलता है?”

“डेंडी की तबियत ठीक नहीं थी। पचा नहीं, उन्हें कल एकाएक  
 क्यों कै हो गयी। मैं तो पचरा गयी थी।” रैजिन ने गंभीर-स्वर में कहा।  
 “रॉबिन ! तुम्हारा प्यार कर्तव्य की तलवार पर खड़ा है। उसे मंजिल  
 तक पहुँचाने में धैर्य और सावधानी की जरूरत है।”

“आखिर दुल्हन जायगी अपने ससुराल के घर ही।”

“लेकिन रॉबिन ! मैं अभी दुल्हन बनकर तुम्हारे घर नहीं जा  
 सकती। भरे, तुम कैसे भावभी हो ? मेरे बूढ़े बाप की हालत पर तुम्हें  
 तारस नहीं आता। उसका इस दुनिया में कौन है। कौन उसे पानी  
 पिलाएगा, कौन उसे खाना खिलायेगा ? उसके कोई बेटा भी तो नहीं  
 है, केवल एक लड़की है—कुछ सत्तर रुपये कमाने वाली लड़की। जरा  
 उस बूढ़े को बैलकर बिचारो।... मैं वह दुल्हन बनना नहीं चाहती  
 जिसकी विधवाँ बाप की मौत का न्योता बन जाय।”

रैजिन का चेहरा लाल हो गया था और उसके नेत्रों में आँसु छल-  
 छला भाये थे। बघर बाय उफ़न कर भाग धुक्काने लगी थी। उसकी  
 मुगम्भ ने रैजिन का ध्यान भंग किया और वह थाम नीचे वसारेने  
 लगी।

रॉबिन ने कहा “भावभी की उम्र का कोई भरोसा नहीं है। मैं कहीं  
 तक प्रतीक्षा करूँगा ? तुम होगी जून खाना हमारे घर से अपने डेंडी के  
 लिए भिजवा देना।”

“नहीं। मैंने एक बार इस बातल डेंडी से पूछा था। उन्होंने हँस  
 भरकर मर सी थी, पर हँस के साथ जैसे विपाद उनके चेहरे को ढँक गया।  
 रात-भाधीरात उन्हें कौन संभालेगा।”

“मैं उनसे बात करूँ ?”

“नहीं। अगर तुमने उन्हें कुछ भी कह दिया तो...” रैजिन का स्वर

कटोर था। उसने चाय का एक प्यासा उसकी ओर बढ़ाया और खुद भी चाय पीने लगी।

कुछ देर दोनों मौन रहे। दोनों बहुत ही गम्भीर थे।

एकाएक रैजिन बोली, "मैंने तुम्हें कई बार कहा है कि अगर तुम्हें मेरी बातें भंजूर नहीं हैं और न तुम मेरी प्रतीक्षा कर सकते हो तो किसी दूसरी लड़की से विवाह कर लो। मैं राब कहती हूँ—तुम्हें दुस्रा मे ही बूगी।"

"यह संभव होता तो मैं तुम्हारे पास बार-बार नहीं जाता। रैजिन! मैंने तुम्हें प्यार किया है। तुम्हारे साथ मैंने जीवन के हजारों क्षण बिताये हैं। तुम्हारे बिना मैं एक पल भी ज़िन्दा नहीं रह सकता। तुम्हें गुमारे विवाह करना ही होगा। कहाँ तक हम पाप करते रहेंगे?"

रैजिन की दृष्टि में संकोच तैर उठा, "मैं उसे पाप नहीं मानती। समर्पण, वह भी प्रेमी को, वह तो महादान और एकाकार का प्रतीक होता है। फिर भी मैं उस समर्पण को एक भयानक दुर्घटना की तरह धीरे-धीरे भुला दूँगी! अपने अन्तस् के कलुष, पाप और गंदगी को शिशुओं से धो दारूँगी। वर्ष के फाँस किस पाप को नहीं धो सकते हैं? पर मैं अपने डैडी को जरा भी धायात नहीं लगने दूँगी। उन्हें नहीं छोड़ सकती।"

"यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है।"

"हाँ।" उसकी आँखें सजल थीं।

×

×

×

रैजिन चला गया। रैजिन अपनी हवेलियों में बूँद छिपाकर रो पड़ी। उसने रैजिन को क्यों प्यार किया? प्यार करके उसे अपना तरीर क्यों सोचा? आज उसने इस बात को याद दिलाकर उसे लगना चाहा। सोचा होगा—भारी सतीस्व के नाम पर भजपूर की जा सकती है। पर मैं उसकी बात नहीं मानूँगी। यादिर वह अपने स्वस्थ-स्वावलम्बी बाप को नहीं छोड़ सकती तो मैं अपने दीन-हीन बाप को क्यों छोड़ूँ?

उसका बाप खुश कमाता है और मेरे बाप की हर साँस को मेरे सहारे की जरूरत है।

वह षष्ठी देर तक विचारो में खोयी रही।

गिर्जाघर के पीछे रैजिन का मकान था और उसके काफी दूर सरकारी हस्पताल के पीछे रॉबिन का। रैजिन का बाप कम्याउन्डर था जिसकी एक टाँग और एक हाथ लकवा हो जाने से बेकाम हो गया। मा बचपन में मर गयी थी, अतः परिस्थितियों रैजिन को तुरन्त नौकरी करनी पड़ी। उसने केवल मैट्रिक ही पास किया था।

वह धारम्भ से तेज बुद्धि की थी। रॉबिन के साथ उसका बचपना बीता था। दोनों साथ-साथ पढ़े थे। यौवन की बहुलीष पर रोमांच से भरपूर क्षण भी बिताये थे। विवेक के साथ उनके विचारों में हड़ता आने लगी। दोनों ने निश्चय किया कि वे शादी करेंगे किन्तु गरा दो वर्ष पूर्व रैजिन के पिता के साथ यह दुर्घटना पड़ गयी। वे साधार और अग-हाय हो गये। अतः वह अकेले पिताजी को नहीं छोड़ सकती थी। अब रॉबिन शादी के लिए जल्दी करता और रैजिन कहती कि नहीं, अभी नहीं। धीरे-धीरे उनका वातावरण बिगड़ गया। रॉबिन कभी-कभी उस पर क्रोधित हो उठता था। रैजिन के बाप को भी इस तनाव का धीरे-धीरे आभास हो गया और उसने रैजिन को कई बार सम्झाया भी पर रैजिन का संवेदनश्रम मन अपने साधार बाप को छोड़ने को सँवार नहीं हुआ।

×

×

×

रैजिन का ईसाई बाप प्यारेसास धार्मिक विस्तार पर सेटा हुआ बार्डिंस पड़ रहा था। उसके चेहरे पर स्निग्धता और प्रभावशालि थी। सभी रॉबिन ने प्रवेश किया।

“बैठी।” गुड भागिय।

“आपने रॉबिन आम्हो, आज कॉलेज नहीं गये?”

“नहीं।”

“क्या ?”

“छुट्टी ली है।”

“कोई खास काम था ?”

“हो, वह भी आपसे ही।”

“बैठो, हाँ कहो।”

रोबिन इतमिनान से बैठ गया। उसने रिगरेड जमा ली। उसका कया खींचता हुआ वह बोला, “डैडी ! आपसे एक प्रार्थना है, आप रैजिन को रामराम खींचिये। वह अपना हठ नहीं छोड़ रही है। मैंने उसे लाख बार समझा दिया कि तुम डैडी को दिन में कई बार संभाष लेना, पर वह अपने हठ पर ज्यों की त्यों है। कहती है—तुम यहाँ आकर क्यों नहीं रहते ? भला यह कैसे संभव हो सकता है ?”

थामसन ने सूखी मुस्काह के साथ कहा “अब तुम दोनों को विवाह कर ही लेना चाहिये। अधिक देर किराी अनिष्ट का कारण भी बन सकती है।”

“यही तो मैं भी कहता हूँ। देखिए न, मेरे डैडी भी मुझे विवाह के लिये बार-बार कह रहे हैं।”

“कैसे नहीं कहेंगे। तुम्हारा छोटा भाई पीटर भी तो जवान हो रहा है। और, मेरी भी यह इच्छा है कि वधूवतः का प्यार अब अद्भुत वधूवतों में बँच जाय।”

“बैठ जाने पर आप...” उसने उसकी भारी हुई टाँग और हाथ की ओर संकेत किया।

“मैं ही अभागा हूँ।” थामसन ने भीये नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा, “कुछ इत्साम नई बदलसीय होते हैं। देखो न, मेरे फरररर मेरी बचची को अपने निजी जीवन का बोझ भी सुख नहीं मिल पा रहा है। बेकारी रात-दिन मेरे जीवन को सँवारने में लगी रहती है। मैं अब उसे भण्डूर कहूँगा।”

“लेकिन डैडी आप मेरा नाम सब खींचियेगा। आप उसे किसी भी

सम

तारह सादी के लिए राजी कर लीजिये ।”

“कर दूँगा ।”

“सच ।”

“यकीन रनो ।”

रॉबिन चला गया । धामगन बड़ी धेर तक विग्रुह था बैठा रहा । यह अपनी बदनसीबी के बारे में न जाने क्या-क्या सोचता रहा जिसके पामय उसे दूरारे पल याद नहीं रहे । हाँ, यह सही था कि उसने अपने मन में यह निर्णय जरूर कर लिया था कि उसकी बदनसीबी अब उसकी बेटी के जीवन को भी निगलने लगी है ।

×

×

×

घर में प्रवेश करते ही रॉबिन ने पुकारा, “डैडी, गुड र्थनिंग ।” और उसने आकर डैडी को अपना खुम्बन दिया ।

“आज बड़ी धेर कर ली ?”

“डैडी मैंने एक द्यूशन कर लिया है । सेठ बनारसी दास हैं न उसकी लड़की को पड़ाऊँगी । तीस रुपये एक बन्दे के बनें । है न खुशखबरी ?”

“नहीं पगली, क्यों अपने आप पर भरपाचार कर रही है ।” उसने थोड़ा रुककर कहा, “मेरी एक बात मानेगी ?”

“एक नहीं, घनेक कहो डैडी ।”

“फिर तू विवाह कर ले । बेचारा रॉबिन तेरे प्यार में पामल बना फिरता है । और मेरी भी आँखें बन्द होने के पहले तुझे दुल्हन के रूप में देखना चाहती है । बूढ़े बाप की सबसे बड़ी मालसा यही तो होती है कि उसकी सन्तान को सारे दुख उसकी आँखों के सामने मिल जायें ।”

रॉबिन का स्वर एकदम बदल कर तेज हो गया, “माखूम होता है, रॉबिन आया था ।”

धामसन खबर गया, परन्तु सने अपने आपको सँभाल लिया । अपनी कोप को हँसी में छुपाकर बोला, “नहीं नहीं, तुम्हें तो आजकल इस विषय

मे रॉबिन ही नखर जाता है। वह यहाँ क्यों आने लगा ? यह तो इस समय कालेज चला जाता है।”

“फिर आप मुझे कभी भी आदी के लिए न क्या करे। मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि आपके जीते जी आपको अपने भविष्य नहीं कहेंगी। रॉबिन में अगर इंसानियत है और वह मुझसे अच्छा प्यार करता है तो वह यहाँ रहने की बात के साथ मुझसे विवाद कर सकता है।” रॉबिन ने बड़ी दृढ़ता से कहा। उसकी आँखें स्थिर हो उठी। उसका बचन काँपने लगा जैसे वह अपनी सभी भावनाओं को आर कर कह रही है।

धामसन कुछ बोले, इसके पहले ही रॉबिन बाहर चली गयी। वह अपने काम में व्यस्त हो गयी। बाप-बेटी ने साथ-साथ खाना खाया, पर दोनों में तो कोई नहीं बोला। उनकी माय-भविष्य में लपटा था जैसे वे दोनों बाप-बेटी नहीं, अपरिचित हैं। धामसन ने जाने के पूर्व पूछा, “मुझसे तुम नाराज हो रॉबिन, अपने उस नालायक पाप को क्षमा कर देना। जब मैं तुम्हें कभी भी विवाह के लिए मजबूर नहीं करूँगा।” धामसन की आँखें भर आईं। रॉबिन भी सब अपने को नहीं रोक सकी। अपनी मायिका की तरह पिता की गोद में छुपकर सिमक पड़ी।

रात काली और काली हो रही थी।

X                      X                      X

रॉबिन प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गयी। मोंगा आकाश : धामसन ने लिङ्गकी की राह ली—आकाश—मोंगा जनानी के चोंच में मयहोश और सामोश है।

रात निर्जागर : सज्जादा।

वह सोच रहा था—“मेरे जीवन का क्या संकट है ? भ्रम है, भार है, बेटी की जिन्दगी का भ्रम है, क्यों है ? केवल जीवन के इन चिन्तों, जिसकले-सड़पले चंद साँस और लेने के क्षण : कि., कि.: कि.: में कितना स्वार्थी और नीच है ?” उसने काली छाया की सोबी अपनी बेटी को देखा। उसका मन उसके पीछित जीवन की स्मृति से भर आया और

वह न जाने क्यों सिसकने लगा। उसकी सिसकी जैसे ही सुनाया पड़ती थी धीरे-धीरे में वह खिसकता हुआ रेजिन के पास पहुँचा। उसके बिस्तरे को चूमा और अपने मन में कहा, "घोड़े की टाँग टूट जाने पर समझदार मालिक उसे पीड़ा से बचाने के लिए गोली मार देता है, फिर क्यों नहीं, ईश्वर एक ऐसा कानून बनाता जिससे प्रयोजनहीन इंसानों को भी सँस लेने का हक न हो।" उसके मन में अमानक आन्दोलन होते रहे।

वह चुपके के सहारे बढ़ा। कुरदरे फर्श पर बिस-बिस कर चलने से जैसे बड़ी तकलीफ हो रही थी। धीरे-धीरे वह कमरे के बाहर हो गया। उसने चारों ओर देखा—स्तब्ध घोर नृणा घातावरण। वह आकाश को निहारता रहा। गिर्बे के ऊपरी गुम्बद को आवर भरी दृष्टि से देखता रहा, "ईश्वर! मुझे क्षमा करना।" वह धीरे-धीरे बकरी के पास गया। बकरी जैसे उसके मन के बुरे इराबों से परिचित हो गयी हो, वह मिमिया उठी। वामसन काँप गया। उसमें शक्ति जड़ता आ गयी और धीरे-धीरे अमावसा गिर्बे की ओर उठ गयी।

उसने बड़ी सफाई से रस्सा जोला। वह सारा कार्य इस तरह कर रहा था जैसे उसने सारी योजना पहले ही बना रखी हो। वह रस्सा लेकर फिर बढ़ा। खिसकते-खिसकते उसका पुराना पाजामा भी फट गया। वह छत की सीढ़ियों के पास जाकर सुस्ताने लगा। उसने तुरन्त उस रस्ते को अपने गले के चारों ओर लपेटा, उसी गिरजे की चड़ी ने तीन बजाये। उसे लगा कि तीन टंकारें हथेली की तरह उसके दिल पर पड़ रहे हैं। वह विचलित हो उठा और उसका सारा बदन भीन गया क्योंकि उसने उसी समय सोचा था, 'कहीं रेजिन आग गयी तो?' उसने सीढ़ियों की ओर अपनी पीठ कर दी और पीठ के बल वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। धीरे-धीरे वह सारी सीढ़ियाँ चढ़ गया। वह छत पर जाकर खुदका सा पगला। उसका अंधीर दृष्टने लगा उसने प्रभु से प्रार्थना की और रस्ते का एक सिरा ओरी के तल में बाँध दिया और दूसरा तले में डाल कर गँठ लगायी। अगले एक हाथ ने बड़ी बेर में वह गँठ लगा पाया।

जब वह यह काम पूरा कर चुका तब उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने एक फलसू आदमी के दुखों के अंत करने में जो सहयोग दिया है, उसके लिये वह उसका अत्यन्त कृतज्ञ है। उसका दिल अपनी लाइली बेटी के लिए अनायास ही तड़प उठा। वह बालक की तरह जोर-जोर से रोना चाहता था पर वह ऐसा नहीं कर सका। धीरे-धीरे उसका मन फिर बेटी के प्यार में उलझकर कमजोर होता गया। उसे महसूस हुआ कि वह अपनी बेटी के जीवन को अपने प्राणों के मोह में सुखी नहीं कर सकेगा। इसलिए वह तुरन्त नल के पीछे की ओर लटक गया। कुछ ही घेर लड़कता रहा—कब उसके प्राण निकले वह कोई नहीं जानता। हाँ, मरने के पूर्व उसने अपनी प्यारी बेटी के सुखद जीवन की कामना की, हे ईश्वर! उसे राबिन की कुल्हन बनाकर उनके प्यार को अभुष्ण बना दे। वह एक अच्छी मीठी की तरह अपनी सज्ज बुधारे, और उसकी पथ-रानी इष्टि गिर्जे पर जन्म लयी।

---



## एक मीनार और दो झूटे दिल

०

मीनार की सीढ़ियों के दरवाजे के आगे पहरेदार के नातदार छूतों की अग्रिम आवाज गूँज रही थी—कड़-कड़-कड़ । कभी-कभी यह अपने मन्द स्वर में कोई फिल्मी गीत गुनगुना उठता था । प्रोक्सावरमा में उस पहरेदार के मुँह से यह गडिया फिल्मी गीत बड़ा विविध लग रहा था । लेकिन उसकी गुंथा से उसकी सम्ममता का प्रत्याजा सहजता से लगाया जा सकता था । उसका हिलता हुमा सिर उसके गीत में जो जाने का प्रमाण था ।

मीनार के चारों ओर सोलाकार बगीचा था । उस एक विशाल हमली के पैड़ के तने का सहारा लिए हुए एक युवक बैठा था । उसके मुँह पर चिन्ता और व्यग्रता के भाव स्पष्ट सीक रहे थे । उसका कुर्ता और पायजामा कटा और सँता था । हाँ, उसके पानों में जो छूते थे, वे बिल्कुल नए और चमकदार थे, जिससे देखने वाले सहजता से यह अनुमान लगा सकते थे कि यह छूते छुराए हुए हैं—किसी मन्दिर के आगे से या किसी बूकान से । युवक के चेहरे की सभरी छड़ियों ने उस की बड़ी-बड़ी आँखों की सुन्दरता को विचलनकर उन्हें मयावक बना दिया था और जब उसकी आँखें दियर होतीं, सब ऐसा प्रतीत होता था कि इन आँखों में चिनगारियाँ जल रही हों

और वे किसी को भस्म करने को आतुर हों। उसकी बार-बार बन्द होती मुट्ठियाँ उसके अन्तस् के आक्रोश और रोष की प्रतीक थीं। पैर से टकराते गिर से लगता था कि उसके मस्तिष्क का विपुल विद्रोह असफल हो गया है और वह कुछ गड़बड़ कर देना चाहता है। पहरेदार उस युवक पर बार-बार तेज निगाह डाल देता था। वह तेज निगाह प्रचन मरी होती थी, जिसे वह युवक सहन नहीं कर पाता था। और जब कभी पहरेदार घूमता हुआ उसके पास आकर खीटी ज्ञाने लगता, तब उस युवक के चेहरे पर खुराभरी रेखाएँ ब खुल्लाहट नाच उठती थीं। अन्त में वह खीटी पीता हुआ उसके पास आता और बोला, "खीटी पिओने यार?"

युवक ने भौन रहकर अपना हाथ बढ़ाया और पहरेदार से खीटी लेकर पीने लगा। उसके चेहरे पर गहरा भावेष और आक्रोश था।

पहरेदार ने उस युवक पर सडती नजर डालकर अपने आप ही कहा, "अच्छा किया सरकार ने?"

"अच्छा किया?" चौक पड़ा युवक। न चाहते हुए भी उसने पहरेदार को उत्तर दिया। उसकी गहरी धवी आँखों में चिन्मय तौर उठा।

"जि मकले आदमी को मीनार पर चढ़ने मही देती, वही मही हमेशा एक न एक आदमी जकर मरता।"

"क्यों?"

"साला जमाना ही कुछ ऐसा आ गया है।" जिसे देखो छोटी-छोटी बात पर मही से मरने को दीक्षा चला जाता है, धू।" और उसने हुना से धूक दिया।

युवक गुम हो गया। पहरेदार लम्बा कंधा सींचकर पुनः सोला—  
"मुझे तो तुम्हारे पद भी शक हुआ था कि तुम जकर कोई गड़बड़ करने आये हो।"

युवक का मुख विकृत हो गया। अपने दोनों हाथों के प्रशिक्षणों को अपने दाँतों के बीच भीच कर उसने आगे उमलती दृष्टि से उस

पहरेदार को देखा। पहरेदार खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, "ऐसी तेज निगाहें मैं बहुत देख चुका हूँ। हर एक के दिल की बातों को यहाँ से भाँप जाता हूँ। यहाँ का बहुत पुराना नौकर हूँ। काफी तर्जुबा हो चुका है।" सरग-भर रककर बोला, "सुनो, जब तुम मेरी नजर बचाकर मीनार पर आगे, तभी मैंने समझ लिया था कि तुम कुछ गलत करने आए हो। बोल भी नहीं रहे हो। मत बोलो, पर यह बड़ी हिर की लम्बी चुप्पी तुम्हारे दिल के कुरे इरादों को नहीं छिपा सकती?" और वह जीन होकर फिर बीड़ी पीने लगा। वह बुझा बंध के साथ आसमान की ओर छोड़ रहा था। कभी-कभी वह बोलाकार जुमा छोड़ने की भी असफल चेष्टा करता था।

युवक अपने हाथ की चुन्नी बीड़ी को तोड़ते हुए बड़बड़ाया, "खत बकवास है, जाओ अपना काम करो।"

"मे बकवास करता हूँ?" वह विस्मय से उसके तन्निफट आकार बोला, "अच्छा, फिर तुम यहाँ क्यों आए थे?"

युवक इस समय सूखी और व्यंग भरी हँसी-हँस पड़ा। दार्शनिक की भाँति भारी स्वर में बोला, "मीनार पर चढ़कर तुम्हारी इस दुनिया को देखने। यह पता लगाने कि इस विराट दुनिया में मेरा अपना क्या अस्तित्व है। मेरे इस छोटे से जीवन का क्या मूल्य है?"

पहरेदार उस युवक की भारी बातें न समझा। अपनी सूझता को छिपाने के लिए वह अपने होंठों पर चुन्नी-चुन्नी मुस्कान लिए अपनी निमल जगह पर आ गया। युवक दूब को तोड़ रहा था और पहरेदार को प्रश्न भरी दृष्टि से देख रहा था। कभी-कभी, वह दूब के दो-चार तिनके मुँह में दबाकर भगाने भी लगता था।

थोड़ी देर बाद उस युवक ने मीनार की ओर भाते हुए एक अन्ध युवक को देखा। पहले युवक की नसों में गर्मी बोड़ गई। वह क्षीप्रता से उठा और पहरेदार के पास खड़ा आया। व्यंगमिश्रित स्वर में धीरे धीरे बोला, "क्यों पहरेदार साहब, मैं इस आदमी के साथ ऊपर जा

सकता है ? अब तो हम वो गए हैं न ?”

“बेशक ! एक साथ दो आदमी इस भीमार पर बिना किसी रोक-टोक के जा सकते हैं ।” पहरदार ने दूसरी बीबी सुलगाई, “सुना भाई, एक साधा हुरामी ‘अनोखे’ बा । खुद बचमान खिलास छोकरियों के पीछे भागता था, पर जब उसकी बीबी ने एक नौ हस्ते अदाम से मजदूर लडाई, तब साधा साँस मचाकर ऊपर से झूब पड़ा । मर्ब जात भी बड़ी मजीब होती है । पित्त भी अपनी और पेट भी अपनी रसना चाहती है ।”

दूसरे युवक की भाकति अब दिखाई पड़ने लगी थी । वह बहुत पीरे-पीरे आ रहा था । अच्छे कपड़ों एवं बिखरे बालों में यह आधुनिक भजनूँ सा लगता था । उसके उठते हुए रह-रहकर कदम उसके झूटे बिल की दास्ताँ सुना रहे थे ।

पहला युवक प्रथम भारी दृष्टि ने अब भी पहरदार की तरफ देख रहा था, मुल्करा रहा था । अन्त में वह युवक बोला, “ऊपर चढ़कर देखूँगा तुम्हारी इतनी बड़ी दुनिया में क्या-क्या है ?”

“क्या तुम अभी पैदा हुए हो ?” पहरदार ने बिनासा से पूछा ।

“जब किसी आदमी के मन में एक नया पुनर्जन्म विचार आता है, तब उसे ऐसा माझूम होता है कि उसने नया जन्म पाया है । उसके लिए उसकी प्रत्येक विरपरिचित वस्तु अपरिचित और अनोखी बन जाती है ।”

पहरदार इस बार भी उसके भारी-भरकम विचारों को नहीं समझ सका । वह सर्वथा मीन रहा ।

दूसरा युवक भीमार की सीढ़ियों के बरताने पर हड़बड़ाता हुआ आया । पहरदार की ओर बिना देखे ही ऊपर चढ़ने लगा कि पहरदार ने दूसरे युवक को आवाज भरे स्वर में कहा, “ठहरो ! खोले-खोले जाना नैर कानूनी है । तुम इस युवक के साथ जा सकते हो । देखो, कोई गड़बड़ी मत करना । अभी तक भेरे पहर में वो आदमी ही अस्तमहत्या कर पाए हैं, बाकी किसी को भी कामयाबी नहीं मिली । शेष पहरदारों का धिक्काई

बहुत सराब है। किसी के पाँच और किसी के दस।" पहरेदार ने अपनी मूँछों पर ताव दिया।

तूमरे युवक ने उसे एक पल के लिए देखा और बिना कुछ कहे वह सीढ़ियों की ओर बढ़ गया। पहरेदार ने बहुत बिचकाकर कहा, "भाज किसी भी जाने वाले का मुँह अच्छा नहीं है। भागो, तुम भी उसके साथ, देख भागो कि वह बुनिया कितनी बड़ी है?"

पलम्ना युवक भी लगकर सीढ़ियों पर बढ़ गया।

मीठियो पर घोर मन्धेरा था। पर हर जुमाव पर एक छोटी-सी लिडकी थी। पहले युवक ने, जिसके मुँह की व्यपत्ता और मनसोप कुछ कम हो गया था, एक जुमाव की लिडकी के प्रकाश में तूमरे युवक के सम्मुखीना से दूर होते हुए गेहरे को देखा तो उसके शहरों पर शंका की एक मन्त्रान धिरक गई। तूमरे युवक ने अपनी गति को सीमा किया और अपने अपने बाइलों के एक गुच्छे को ओर से पकड़ते हुए उसने पहले युवक की ओर देखा तथा अपने समूचे शरीर को एक विनिमय भटका दिया।

पहले युवक की नजर एक पीछा करने वाले की शक्ति झुक गई। वह एकदम गम्भीर हो गया। फिर जाने क्यों सीटी बजाने लगा?

तूमरा युवक धीरे-धीरे जुमाव पार कर रहा था। भीमार का गुम्बद नजदीक आ रहा था। अस्थायित तूमरा युवक एकदम रुक गया। उसके एकदम ही पलम्ना युवक एक भटके के साथ उसके पास आ गया। दोनों की नजरें एक हुई और दोनों ने अपने-अपने गेहरे के उड़ भावों एवं पूरा भरी दृष्टि से एक-दूसरे का अभिमान किया। फिर दोनों कड़े अस्थायित धीरे-धीरे, एक-एक कदम को-अस्थायित बाटकीयता से उठाते हुए,

गुम्बद आ गया।

दस्ता सूरज गुम्बद के, समसे, समर के सिखर का गुम्बद ले रहा था। भीमार की छाया, सरती पर पौराणिक बैल्य-सी पड़ रही थी। कई क्षण, दोनों भीमार के कदमों का सम्बल लेकर बुनिया को देखते

रहे, फिर दोनों ने नीचे की ओर झोका। पहरेदार, जिसका आकार अत्यन्त छोटा दिखाई दे रहा था, अपनी सूँछों को ताव दे रहा था, ऐसी उन दोनों की दृष्टि का अनुमान था।

फिर दोनों युवक एक-दूसरे को सका गरी दृष्टि से देखते रहे। एक-दूसरे पर सजग प्रहरी के समान नजर रखते रहे और समझते रहे— दोनों के अन्तर के जलते प्रश्नों को।

सूरज डल गया। अन्धेरे के पंख फैलने लगे। दोनों युवक लम्बी, भाड़े छोड़कर, एक-दूसरे की देखते हुए नीचे उतरने लगे। जब ने पहरे-दार का पास पहुँचे, तब पहले व्यक्ति ने मुस्कराकर कहा, “सामान्य दुनिया प्रयोजनहीन गद्दी है। भावमी को जतना चाहिए, आत्महत्या एक पाप है, क्यों भाई?” उरते दूसरे युवक से पूछा।

दूसरा युवक बड़ी खताई से बोला, “पूर्व लोग आत्महत्या करते हैं।”

पहले युवक ने पूछा—“क्यों भाई, बीड़ी है?”

“बीड़ी तो नहीं, सिगरेट है।” दूसरे ने जवाब दिया। दोनों साथ-साथ सिगरेट पीने लगे। सिगरेट के साथ उनकी बातचीत बढ़ी। और बातचीत के साथ मित्रता।

पहरेदार ने भीमार के भारी बरवालों को बन्द किया और गुनगुनाता हुआ जाने लगा।

×

×

×

दूसरे दिन सबेरे।

वे दोनों युवक, जो कल सन्ध्या के समय एक दूसरे को आत्महत्या करना ‘पाप’ और ‘बुरा’ बता रहे थे, नए सूरज के साथ और मनोहारी प्रकाश में अपनी-अपनी जेबों में पड़े पत्रों को पढ़ने लगे। दोनों अपने-अपने पत्र को फाड़ने के पूर्व अन्तिम बार पढ़ना चाहते थे। पहले युवक ने जैसे ही पत्र खोला, सो चौंक गया। उसके मुँह से हठात् निकला—  
“हूँ। यह क्या, कल बड़े में पत्र ही बखल गए?” तब उसने दूसरे युवक के पत्र को खोलकर पढ़ा। लिखा था—

प्रिय रोमी,

तुम मेरे जीवन की मधुर वस्तुएं और नयनों की ज्योति हो पर यह बेरहम समाज हम दोनों को मिलने नहीं देता। मेरी मृत्यु के बाद तुम अपने जीवन को ध्यस्त मत छोड़ना और मुझे भूल जाने का प्रयास करना। चाहो तो तुम किसी और से विवाह कर सकती हो। मेरे हृदय में तुम्हारा प्यार सदा वासन्ती फूल की तरह रहा है और मृत्यु के बाद भी रहेगा।

तुम्हारा बनाया प्रेमी

—सागर

पहले युवक ने पत्र को फाड़ते हुए कहा, "कमबخت कहता था कि आत्महत्या मूर्खता है।" और उसके होठों पर जीवन भरी मुस्कान खिल गई।

×

×

×

दूसरे युवक ने भी विस्मय के साथ पहले युवक के पत्र को पढ़ा। मेरे साथियो,

मेरे प्रेजुएट हैं और निरन्तर तीन वर्षों की बेकारी से तंग हूँ। और सिफारिश के अभाव में मुझे कहीं भी काम नहीं मिल रहा है।..... मैं गत तीन दिनों से सुखा भी हूँ, जीवन के सारे रास्ते बन्द हो गए हैं। इसलिए 'मीनार' पर चढ़कर आत्महत्या कर रहा हूँ। मेरे पास किसी को भी न सलाया जाय। मेरी आखिरी इच्छा है कि देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो और धार्मिक विषमताएँ मिटें।

दूसरे युवक ने पत्र को फाड़ते हुए कहा, "झूठा कहीं का! आत्महत्या को पाप नज़र आ रहा था।" और उसके भगदों पर खैसी ही जीवन भरी मुस्कान खिल गई।

दूसरे की हृदय देव कर अपनी हृदय विषय में परिणत हो गई थी।

## टूटे हुए इन्सान

धीरे-धीरे उसने अपने किराये के मकान की बहुभीव पर कदम रखा। उसकी दृष्टि हुई की दम भर के लिये सीढ़ियों पर बैठ जाय, पर सीढ़ियों पर ब्रूल धिकरी हुई थी और बाली के सूखने पर कई मशीनो-मरीम बिज बन गये थे। यह बेमन सीढ़ियाँ बढने लगी। एक बार उसने अपनी दावत के अनुसार जेकारा और पेट की बेव से मिला-सा रुमास निकाल कर गर्दन पर बहते हुए पसीने की पोंछा।

उसका रंग कासा था और ब्यक्तित्व प्रभावहीन। अगर बेहूरा बोड़ा और पतला होता तो उसकी समता कम से कम नाक को लेकर कौवे की चोंच से अवश्य की जा सकती थी। फिर भी उसके जिगरी-बार उसे मजाक से 'कागदास' कहते ही थे।

तोरण द्वार पर वह क्षण भर के लिए रुका। हल्की भँगड़ाई-सी थी। फिर टायर के छपुवे की ढाई रुपये की कपपल को धीरे से झटका। हल्की-सी देठ उड़ी और उसने अपने कड़े मज़के को पुकारा, 'मुन्ना, ओ मुन्ना !'

'क्या है !' मुन्ना दाल से सने हाथों को जाटसा धुभा प्राया। अब वह बाहरवासी बैठक में बैठ गया था। भीसी-सी चावर से ढँका एक फटा-पुराना बिस्तर बिछा था। उसने पेट-कमीन



खोल कर अपनी बीबी की साड़ी को सहमद के रूप में लपेट लिया था और चारभीनार सिगरेट निकाल कर टॉटो से चगा ली थी।

‘मुन्ने, जा माचिंग ला !’

मुन्ना पूर्ववत् उँगलियाँ चाटता हुआ चला गया।

फिर उसने पुराने तकिये का सहारा लिया और निवारमग्न हो गया।

मुन्ना राखिस ले आया था। उसने सिगरेट जलायी। दो-चार लान्चे फटा खींच कर उसने धायात्र नवायी, ‘मुन्ने, मम्मी को जा कर कहना चाय बना दे।’

उसकी मम्मी सरस्वती ने अपनी पतली आवाज में भीतर से ही कहा, ‘मे पाय बना कर लाती हूँ।’

वह ध्यानसंग-या सिगरेट पीकता रहा। पहली सिगरेट समाप्त हो गयी थी। दूसरी उसने अपनी सिगरेट डिब्बा खला की। गुल एक हुटी हुई प्लेट में झुटका हो रहा था। बुझा गार-सिडकी के न होने की वजह से ऊपर कई मिनी में उड़ रहा था जिससे छुटा-छुटा वातावरण हो गया था।

चाय की गन्दी-सी मोटी ध्वानी रखते हुए सरस्वती ने पूछा, ‘सब्जी लाए ?’

‘नहीं भाई, भूल गया।’ उसने चाय की चुराही की और सिगरेट का धुआँ बाहर की ओर छोड़ा, पर हवा विपरीत होने की वजह से वह वापस बैठक में आ गया। बुढ़ा और बूढ़ गयी।

सरस्वती ने झूठ केर लिया और उसपर खर में बोली, ‘सब्जी नहीं लाये फिर मैं बनाऊँगी क्या ? जाइए और मुझे बाजार से सब्जी ला कर अभी दीजिए।’

दिलो सरो, मुझे तंग मत करो। जो हो बना दो। अब ऐसी थकान में मुझसे बाजार नहीं जाया जा सकता। थक गया हूँ, बुरी तरह। बसत में बहुत काम था। सिर में दर्द भी है। बाव बना लो।’

‘हमेशा-हमेशा की बात मुझको अच्छी नहीं लगती।’ इस बार उसके स्वर का अंशज बदल गया था। वह कंटी हुई सी लग रही थी, ‘लीन

बिन से बाल बना रही हूँ। पर धातु में धातु नहीं बना सकती।'।

प्रानंद ने सिगरेट का अन्तिम कण लिया। उसे बाहर फेंकते हुए उसने कहा, 'शैं अभी नहीं जा सकता। मेरे सिर में दर्द है।'।

सरो भी बिगड़ गयी, 'मे खुद बाजार में ले आऊँगी। आप इस तीन माह की बच्ची को संभाल लीजियेगा।'।

सरो कोश में फूँफकारती-सी भीतर गयी। उसकी मुद्रा कष्टोर और लाल हो गयी थी। पलक झपकते वह अपनी तीन माह की बच्ची को कपड़े में लपेट कर उठा लायी। उसे फेंकने का अभिप्राय करती हुई वह बोली, 'मे बाजार जा रही हूँ। मुझे पैसा दीजिए। मे मरना बहुत बीज नहीं खा सकती हूँ, जिससे मुझे सल्म नफरत हो। मे कदती हूँ कि आप बीज बाजार से आते हैं, फिर सब्जी क्यों नहीं आते?' वह सब बहुत ही धावे-धावेसा से भर उठी थी, 'आप मुझे किसी तरह का सुक नहीं देना चाहते। केवल सताना चाहते हैं। सताइए, जी खोल कर सताइए।' वह अपनी बच्ची को से कर रोती भीतर चली गयी।

आर्गद दूटे हुए इन्सान की तरह नाम को बल्दी-बल्दी पी कर उड़ा हुआ। तापस कपड़े पहने। क्षण भर वह अपनी साम्रिक के पास गया हुआ। साम्रिक का पिछला द्युब एकदम सराब हो गया था। कई बार चिपकाया था, पर अब चिपिया ठहर ही नहीं रही थी। इकानदार ने भी साफ-साफ कह दिया था, 'बाबू जी अब इन पर चिपियाँ चिपकाने के पैसा पिछल लाने कर रहे हैं। वे ठहरने से तो नहीं। आप द्युब ही बद-समा लेते?'।

किंतु उसके पास पैसा नहीं है। इधर उसका जीवन जहरीली हवाओं के बीच साँसे ले रहा है। इन दो वर्षों में कभी उसने चैन की साँस नहीं ली। धुम्र! पीड़ादायक वास्त। क्षण भर के लिए भी चिपकी नहीं।

वह धैर्य से कर धन पड़ा।

सारा के उड़ते पत्तों की तरह बिलस की बलमाई, सब-सब कर उसके मन के पास आयीं और नहीं गयीं।

वह सरकारी दफ्तर में एल० डी० सी हैं। नब्बे रुपये लाता है। बहुत आशुक्त है और अपनी आबना सपनों के चारों ओर सिपटी रहती है। उसकी महत्वाकांक्षा को उकसाती रहती है। उसे प्रेरित करती है, अपनी कल्पनाओं को साकार करने को।

जब वह स्कूल में था, तब बहुत अच्छा अभिनय करता था। वह विद्रोहक बनता था और बच्चों को अपने हास्य अभिनय से खूब हँसाता था। उसके शहर में पेशेवर नाट्य-पाठियाँ भी कभी-कभी उसे अपनी मंडली में शामिल करती थीं। उसका सम्मान और आदर करती थीं। फिर उसने मैट्रिक पास किया। विवाह किया। तीन बच्चे भी हुए। सपनों और परिस्थितियों में संलग्न हुआ। नौकरी करके माँ-बाप से दूर, पराये शहर में आ गया।

माँ-बाप को एक वर्ष तक एक पैसा भी नहीं भेजा। भूलबुलता जब वह बहुत ही लंबी में हुआ तो बच्चों व पत्नी को घर लेकर मेच बिना करता था। परिणाम स्वरूप माँ का स्नेह भी उसने खो दिया। एक बार माँ ने साफ-साफ लिख भी दिया कि अपनी बीबी और बच्चों को मेरे पास मत भेजा करो, मेरे पास मन का कुम्रा नहीं है जो उसमें से रुपये निकाल-निकाल कर तुम लोगों को खिलाती रहें।

और इस घटना के सीधे बाद उसने नौकरी छोड़ दी। वह एक नाटक मंडली में सम्मिलित हो गया। दो माह के बाद वह मंडली टूट गयी और आनंद ने बड़ी अनुनय-विनय और दीक-भूप के साथ पहले वाली नौकरी वापस पायी।

लेकिन अकांक्षाएँ उसके कल्पना लोक में छाती रहीं। अपने आप से तीव्र असंतोष किसे हुए वह जी रहा था। सुबह-रात वह दफ्तर जाता और घर में आकर पड़ जाता। उसे दूर बड़ी भयता कि उसके जीवन में तनाव ही तनाव है और हर पल मुर्दा है, इसना मुर्दा कि उसमें सह-जता से रहा भी नहीं जा सकता। और वह सोचता है कि हम सभी मुर्दा हैं, इसने मुझे कि हममें अपने जीवनत सुखी क्षणों की प्राप्ति करने की-

सालसा ही नहीं है ।

बाजार पहुँच गया । उसका ध्यान भंग हो गया । उसने बेमन सज्जी सी और वापस घर की ओर चल पड़ा ।

वह धीरे-धीरे ऊबड़-खाबड़ सड़क पर चला जा रहा था । कैसा है उसका जीवन ? न उत्साह और न खुशी !

एकचम बंजर भूमि की तरह अनुपयोगी ।

और एकाएक उसे अपना सम्बन्ध जोस्त संतोष मिला । बोला, 'तुम्हें ही डूँड रहा था । खुद मोके पर मिले ।'

'क्यों ?'

'आज रिहर्सल में चलना है ।'

'कितने बजे ?' आनंद उत्साह में भर जाया । उसकी बुझी-बुझी आँखों में एकाएक आश की चिनगारी-सी जली ।

'ठीक वस बजे ।'

'कहाँ ?'

'नाट्य मंडल के दफ्तर में ।'

और वह ठीक वस बजे नाट्य मंडल के दफ्तर पहुँचा । संतोष ने उसकी बड़ी आननगंत की । उसे अपने साथियों से परिचय करवा । उसे हीरोइन 'क्या' से मिलाया । क्या ने अर्थ भरी मुस्काहट से उसका स्वागत किया, 'सोग कहते हैं कि आप यहाँ के ए-वन कामेडियन हैं ।'

आनंद लज्जा से सिकुड़ गया । सर्वन नीची करके लड़ बोला, 'आप मुझे धर्मिबा करती हैं ।'

'अबकी बार मैं आपका अभिनय देखने दिल्ली से यहाँ आऊँगी । मेरा अभिनय तो इस नाटक में आप देखने ही ।'

और आनंद ने अपने मित्र संतोष से प्रार्थना की, 'आई मुझे भी इस नाटक में जरा-भरा पाट दे दो । मैं अपनी जान लगा दूँगा—अपने पाटों में ।'

लेकिन संतोष ने उसे कोरा-उत्तर दे दिया । उसने सिगरेट की कण्ठ चींच कर कहा, 'इस नाटक में मेरे बाहर के दोस्त काम करेंगे । मैं मज-

पूर हैं। मैं अपने साथ अपने बम्बई के कलाकार बोस्त लाया जो हैं।'

पर भानंद सदा रिहर्सल में भाता था। दया से खूब धुल-मिस कर बातें करता था। दया ने दो-तीन बार उसे अपने घर से भी बुलाया था। उसे लगा—भरती महसूस होती। ठूँठ हरे होने लगे हैं। उसके चारों ओर बुधिया। चौकनी बिखर गयी है।

इस नाटक में पूरे सात सौ का नाम हुआ। दया ने जाते-जाते भानंद से कहा, 'आप कीविए न नाटक? आप एक ऐसा नाटक लिखिए जिसमें मैं हीरोइन और हीरो आप हों।' कामिक के ऐसे चुभते टप्पे हैं कि पण्डित उछलने लगे।

और तबसुख भानंद रंगीले सपने देखने लगा। एकांत क्षणों में उसके मन में दया को ले कर इन्तजिलता रहता था और उसके कल्पना लोक में वह दृश्य बार-बार उभर आता था कि वह दया के साथ हीरो बचा रहे। इससे उसे आंतरिक सुल मिलता था। कितनी मधुर कल्पना? वह कब पूरी होगी। होगी भी या नहीं? वह भौंवर पैंती नाव की तरह असहाय हो जाता और उसे लगता कि उसका जीवन व्यर्थ है? वह कैसे पीड़ित जीवन से निष्कृति पाये? तब वह उदास हो जाता और उसके चारों ओर विषमताओं के मेरे छा जाते। दया नकड़ी के जाले में जैसे छोटे-से कीड़े की तरह हो जाती। वह कुछ भी नहीं कर पायेगा।

बीबी अपने मायके लगी गयी थी।

भानंद घर में अकेला था। उदास और झुटा-झुटा-सा। संतोष पाया। बोला, 'दया का पत्र आया है। तुम्हें वह खूब याद करती है। प्रोत्सा है कि वे कम अपना झुआ करेगे?'

भानंद ने निश्वास छोड़ कर कहा, 'इच्छा मेरी भी बहुत है कि मैं एक नाटक कर्क? एक बार अपना भाई लोगों को सही रूप में बताऊँ पर पैसा कहाँ से लाऊँ?'

'तुम तीन-चार सौ का प्रबंध कर लो। फिर सब ठीक हो जायगा?' संतोष ने चुटकी बजा कर कहा।

‘मैं तीन गी कपड़ों का प्रबन्ध नहीं कर सकता ?’

‘हिम्मत न हारो। कम से कम पाँच सो के लाने का मैं प्का लेता हूँ। कहीं से उधार नहीं मिल सकता।’

‘नहीं !’

संतोष ने उलाहना दिया, ‘तुम हरी चक्की में ही उग्र भ्रम मिसते रहोगे ? करो कलकरी धीर भरो !’

वह नाराज हो चला गया।

रात बहुत काली थी। बाइलों के कारखाने सारा भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। जेबेरा, जोर जेबेरा ! फिर दो बंटे के लिये बिजली चली गयी। सब शहर में आदिम युग का तिमिर छा गया।

पह माधिस झूझने लगा। वह सन्दूक से मोमबत्ती निकाल कर जला-येगा ? उतने सन्दूक खोला। मोमबत्ती के साथ उसे प्रपनी पत्नी की सोने की जंजीर हाथ लगी।

मोमबत्ती का प्रकाश अब कमरे को मद्धिम रूप में उद्भासित कर रहा था। सन्दूक में दो-चार सान्निर्ग पड़ी हुई थीं। उसने धीरे-धीरे कपड़ों को व्यवस्था-व्यवस्था कर रख दिया। छोटे-छोटे कुछ जेवर थे—उसकी पत्नी के।

उन जेवरों को देखते ही उसके मन में एक विचार आया। कुछ परिचित दोस्त उनकी भाँजों के भागे नाच उठे। क्या भी उसे सहसा याद हो आयी।

जेवर उसके हाथों में थे और उसकी आत्मा की पुष्पाएँ उसके भागे भूल रही थीं।

‘इन जेवरों को गिरवी रख कर मैं एक नाटक खेल काऊँ। पाँच सौ का लाभ हो तो एक मंडली बना आऊँगा। फिर वैसे ही पैसा है। क्या साथ रहेगी ? कितना सुखी जीवन होगा ? यह इसी तरह, की, उबेकतुन में जोसा रहा।’

सुबह होते ही उसने निराश किया कि उसकी पत्नी तो पूरे दोह माह के बाँध लौटेली, सब तत्काल नाटक खेल कर सारा काम पूरा कर लेगा

उसकी पत्नी भी उसके कार्य की तारीफ करेगी और वह उसके लिए एक अच्छी-सी मोने की अँगूठी लाभ के रूपों की बना कर रहेगा। वह खुश के सपनों में भूलता रहता। भूलता रहा।

उमने उम दिन दफ्तर से छुट्टी ले ली। वह संतोष के पास गया। उसे अपनी योजना सुनायी।

संतोष की आँखों में सलनायक की चमक दीप्त हो उठी। दुष्टता भरी मुस्कान बिखेरता हुआ वह बोला, 'पैसा बरस पड़ेगा। कामिक के तुम पावसाह हो और दया रूप की मस्जिद है। दोनों की जोड़ी खूब रहेगी।'।

और आनंद ने बड़ी मेहनत से एक नाटक लिखा। जैसी योग्यता वैसा नाटक! हर रात को अभिनेता संतोष अपनी मित्र मंडली को इकट्ठा करके जूय पाय-पाय उड़ाता था। धीरे-धीरे पूँजी आधी रह गयी। एक किा चिन्तित स्वर में आनंद ने पूछा, 'संतोष वो सौ रूपों में से सौ की बने हैं। नाटक कैसे होगा?'।

'तुम इसकी चिंता मत करो। कम पचास रुपये दया की एकवाँस भेष दो और उसे लिख दो कि हमारा तार पाते ही वह चली भाये।'।

वह भी काम हो गया। नाटक की तारीख भी तय हो गयी। दो दिन पहले तार दे दिया गया। उसने जवाब दिया, 'थो सौ रुपये पहले भेष दो।'।

आनंद के पर्सों के भीचे से जमीन खिसक गयी। वह संतोष के पास गया। संतोष ने गंभीर हो कर कहा, 'साली ने थोसा दे दिया। इन अभिनेत्रियों की कोई जात नहीं होती। कब पसंद आवे? मुझे ऐसा गुस्सा आता है कि जा कर साली को पीटूँ।'।

'भाई, अभी इन बातों में कोई फायदा नहीं। अभी तो कुछ करो, मेरी बीवी के जेवर गिरवी हैं।'। 'उसने रुखासे स्वर में कहा, 'मैं बरबाद हो जाऊँगा, संतोष! मैं अपनी बीवी को अपना बूँद नहीं खिन्ना पाऊँगा।'।

संतोष ने साफ पसला आकृति हुए कहा, 'मैं क्या कर सकता हूँ।

पुन मेरी सब बातें जानते ही हो। वडी कड़की में हूं। अब कहीं से तीन सौ रुपये लाओ तो काम बने, वरना तुम्हारे साथ मेरी भी इज्जत मिट्टी में ही मिलेगी।'।

आनंद की आँखों में भँवरा छा गया। व्यापारी की तीव्रता के कारण जबान साखू से सट गयी। वह सिर पकड़ कर बैठ गया। वह क्या करे? नाटक नहीं होगा तो उसकी बीबी के सारे जेवर निक आयेगे और जगकी शहर में बड़ी बखनामी होगी? वह क्या करे? यह कहाँ से रुपये लाये?

उसके मन की सारी चाटियाँ अह्वय हो गयीं।

वह दूटा-दूटा-सा भर घा गया। उसने बड़े हुए पैसों में से चार पैकट चारमीनार सिगरेट के खरीदे और रात भर उन्हें पकता रहा।

नाटक नहीं हुआ। जेवर गिरवी के गिरवी रहे। पत्नी भी लौट आयी। खूब परस्पर झगडा हुआ। और अंत में जीत भी आनंद की हुई। पत्नी रो-धो कर चुप हो गयी। किन्तु आनंद ने कुछ दिनों बाद महसूस किया कि अब उसकी पत्नी का स्वभाव एकदम बदल गया है। वह उसका जरा भी विरोध नहीं करती है। कभी भी उसके सुख-दुख के बारे में नहीं पूछती है। केवल उसकी आज्ञा को पूरा करती है। एक दिन नहीं, पूरे सात-सात दिन तक दाख खाती है। कपड़ों में साबुन नहीं लगाती है। एकदम मुर्दा इन्सान! एकदम मुर्दा व्यवहार! हर बात में भीन स्वीकृति! वह धबरा उठा है। वह यह सब नहीं सह सकता। यह अखंड भीन और स्वीकृति उसके जीवन की अस्थिर सरसता भी खीन जंये तब, तब उसकी इच्छा होती है कि उसकी पत्नी सबसे झगड़े, दौके, उल्लाहने दे, अस्सना करे। वह उसे डाँटता भी है पर उसकी पत्नी चुप रहती है, एकदम चुप। पत्नर की सूँठ की तरह मौन।

तब वह भूँझला कर कहता है, 'सरो, मे भर आऊँगा, भर जाऊँगा। तुम कुछ नोछती क्यों नहीं। मे तुम्हारा यह रूप नहीं सह सकता। तुम मुझे पागल कर दोगी, पागल।'।



सरो का मन भर गया है। उसमें कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती है। वह क्षामोश रहती है और आनंद परेशान। जीवन इसी घुटनदार भावसे में सिसकता हुआ गुजर रहा है, गुजरता रहेगा।

और कभी-कभी सरो भी विड़कर कहती है, 'आप मुझे अधिक तंग न करें। मैं बहुत खुश हूँ, खुश। आप बिश्वास क्यों नहीं करते ?'

और कौनो प्रारणी समुद्र के मंदार में डूबे जाते हैं जैसे उनके चारों ओर मुर्दा क्षण जीवित हो गये हैं और उन्हें अपने में लीन रहे हैं, और वे हसते हँस गये हैं कि उन्हें बिटा नहीं सकते।

---

## एक इन्सान की मौत एक इन्सान का जन्म

क्लासेज स्ट्रीट के बस स्टैंड पर, वहाँ सन्ध्या का हल्का-हल्का आधेरा खाने लग गया था, वहाँ अनेक लड़कियाँ बगल में पुस्तकें बांधे खड़ी थी। वे प्रायः हैडबुक की ही सादियाँ पहने हुए थीं और उनके चेहरों पर आपसी हँसी-मजाक से उत्पन्न ताजगी दिखाई पड़ रही थी। लड़कियाँ बचपन में बातचीत कर रही थीं। कभी-कभी लम्बे कदवाली एक काली सी लड़की अंग्रेजी में कराँटे से बोलकर सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। मैं भी उस झुण्ड को निहारता रहा। न जाने कितनी बसें आईं और पुजर गईं, क्योंकि उस स्थान से जाने वाली प्रत्येक बस मेरे गंतव्य स्थान को जाती थी।

एकाएक एक भारी हाथ पीछे से मेरे कंधे पर पड़ा। मैं एकदम चौंका। हाँस भूम कर देखा—ब्रह्माद था। उसकी दृष्टि और मुस्कान दोनों में रहस्य भरा हुआ था। वह कुछ क्षण तक मुझे उसी दृष्टि से देखता रहा और मैं हम अप्रत्याशित भिन्न के कारण स्तब्ध हो गया। मुझ से कुछ बोला नहीं गया।

उसी क्षण, उसी भुवकान के साथ कहा—“बह्माव नहीँ मुझे ?” और वह निस्तान्त सहज मुद्रा में हो गया।

“तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ ?” मैंने गहरी आत्मीयता से

गम्भीर स्वर में कहा, “तुम्हारे साथ मेरे अत्यन्त ही महत्वपूर्ण क्षण गुजरे हैं। बताओ, आजकल क्या चल रहा है ?”

“कुछ नहीं।” उसने तुरन्त कहा।

“क्या मतलब ?”

“जिस, कुछ नहीं। कोई काम तुम्हारे ध्यान में हो तो बताना आजकल मैं यहाँ ठीकी बैठ हूँ।” और वह मुझे समीप के एक रेस्तराँ में चाय पिलाने को ले गया।

हम दोनों गिलासों में बहुत ही कड़क चाय पीने लगे। मैंने अपनी दृष्टि रेस्तराँ में लगे किसी बंगाली चित्र के मैंसे पोस्टर पर जमा कर पूछा, “फिर तुम्हारे उस साप्ताहिक का क्या हुआ ? उस प्रेरण का क्या हुआ ?”

उसके चेहरे पर संकोच की रेखाएँ बीज गईं। अब मेरी दृष्टि बहुत पैनी और तेज हो गई थी तथा उसके मुख पर अपसक्त जमी हुई थी। वह इधर-उधर ताकते लगा और उसने भट से चाय का जलता हुआ एक बड़ा घूँट लिया, जिससे उसकी माँसों में पानी ठहर आया। अपने कमाल से अपनी भाँसों को पोंछता हुआ वह बोला, “सभी कुछ चला गया अब भोग, सभी कुछ। अब तो यह धरीर रह गया है, और इन्सान का शरीर जिसमें पुरुष का, उसकी फुटी कौड़ी भी नहीं उठती।” यह क्षण भर रुका और मेरी ओर देखता हुआ व्याधापूरित स्वर से बोला, “कोई काम दिलाओ न ? तुम्हें शायद यह मायूस नहीं है कि मुझे टाइप भी करना आता है। मेरी स्पीड ४०-४५ की है।”

मैंने उससे प्रश्न किया, “लेकिन तुम तो जरूर अभीर हो। तुम्हारे अपने घर का बड़ा व्यवसाय है, फिर ऐसी दिक्कत क्यों ?”

वह चुप रहा। मेरी अभीर भरी दृष्टि उस पर जमी हुई थी। चाय के गिलास खाली हो गये थे। वह हठात् उठता हुआ बोला, “छोड़ो इन बातों को। बताओ, तुम कलकत्ता किसने दिन धीरे रहोगे ? बड़े सालों के बाद आए हो ? शायद चार-पाँच साल बाद।”

“धूरे छह साल बाद। आधा युग बीत गया है। समय की रफ्तार भी कितनी तेज है? ऐसा पतीत होता है कि गने कलकत्ते के कल ही छोड़ा है।”

दोनों जाकर आ गये। बोली दूर पर कालेज स्ट्रीट का पार्क था। वहाँ दोनों घरती का मंजा लेकर चल रहे थे। अचानक बात ने मेरे मन में उलझाव पैदा कर दी थी। मैंने उससे प्रश्न किया, “नहीं माई, बात क्या है, यह मुझे बतानी ही होगी। यदि तुम ध्यानव्रता करोगे तो मैं भूत की तरह तुम्हारे पीछे लग जाऊँगा और सारी रात तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ूँगा।”

“मात यह ठे जम्हा, प्रभी मुझे एक जखरी काम से धामा है। मैंने अपने एक मित्र को समय दे रखा है। उससे मुझे कुछ सपने रोने हैं।”

“यह प्रोग्राम तुम्हारा फेल ही समझो। अब तक तुम मुझे सही स्थिति में अवगत नहीं कराओगे तब तक मैं तुम्हारा पिछ नहीं छोड़ूँगा। यह रात है और मैं हूँ। भूत की तरह पीछे लग रहा हूँ।”

“तुम विश्वास न करो। मुझे जाने दो।”

“नहीं जाने दूँगा।” मैंने बालक की तरह हठ करके कहा, “शामक में नहीं जाता, बाकिर तुम मुझ से कोई बात सुपाते क्यों हो? जरा पिछले दिनों को भी याद करो, उक्तमुख प्रभाव तुम बहुत बदल गए हो।”

पार्क के पास हम दोनों आ गए थे। अंधेरा गहरा हो गया था। पार्क की कुर्सियों पर शक-हारे युवक-युवतियाँ बैठी थी। सरकारी बसियों का पड़ता हुआ प्रकाश उनके चेहरों की उदासियोंको स्पष्ट कर रहा था। मेरा अनुमान था कि इस बड़े नगर में वे ही हल धमीचों की बेंचों तथा कुर्सियों पर बैठे हैं तिनके पास होटलों में खर्च करने के पैसे नहीं होते। उड़े-उड़े चेहरे घूमते रहे मेरे जाने।

दाम की गड़गड़ाहट ने मेरा ध्यान मग्न किया। हम दोनों टीक कैम्प-ग्रीस्ट के नीचे थे। प्रभाव का चेहरा कुम्भसोहृदयनित विवशता से

भरा हुआ था। वह कुछ सीम कर बोला, “आई, यह तुम्हारी बड़ी ज्यादाती है ?”

“कुछ भी उमझो।” मैंने उसकी ओर बिना देखे ही कहा, क्योंकि मैं मन ही मन अपने इस व्यवहार को बड़ा अशिष्ट समझ रहा था।

“तो फिर सुनो।” उराने जल्दी से अपनी दृष्टि इधर-उधर बीड़ाई। लैम्प-पोस्ट के नीचे कोई नहीं था। थोड़ी दूर पर पार्क से सटे दो युवक अपनी बातचीत में तन्मय थे। प्रह्लाद ने गुरसे से कहा, “मैं खुशारी हूँ। मैं खुश लेखता हूँ। आज मुझे एक घादमी को पैसे देने हैं, अगर नहीं दूँगा तो मैगी इज्जत पुल में मिल जायगी, समझे। अब मैं चलता हूँ, समय हो गया है।” और यह भाग कर चलती राग में बढ़ गया।

मेरे समक्ष लैम्प-पोस्ट का प्रकाश झंझरा बन गया। विमूढ प्राणी की तरह मैं निरचलनिश्चय बढ़ा रहा। प्रह्लाद मेरे मन में प्रश्नों का ताता लगा कर चला गया। उसकी बस मुझसे बहुत दूर निकल गई थी, अतः मैं निहपाव-सा कुछ धेर खड़ा रहा।

फिर मैं धीरे-धीरे कदम उठाता हुआ सड़क पर चलने लगा। घर पहुँच कर अलिच्छा से कुछ खाया और पढ़ गया। बिस्तरे पर करवटें बदलता रहा। बार-बार सोचता रहा, पत्रकार बनने वाला यह प्रह्लाद खुशारी कैसे बन गया ? इराने अपना सर्वस्व जुए में उड़ा दिया ? मन को निश्वास गतीं हुआ। जगता था जैसे सभी कुछ सिध्दा हो। स्वप्नवत घटित घटना की तरह। धायद मुझे कोई भ्रम हो गया हो। इसी उन्मेष-बुन में मैं सो गया।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह मैं प्रह्लाद के घर गया। वर्षों के बाद गया था, इससे उसके बाप ने मुझे पहचाना नहीं। उसके पिता अपनी राजस्थानी पगड़ी को बाँधते हुए बाहर आए और कड़क कर बोले, “कहिए, आपको कितने रुपए लेने हैं उससे ? कितने की थिप्टी (हैंड नोट) निशबाई है ? घर में आपको साफ-साफ बताए देता हूँ। कि धन में उस नालायक-कमीने की एक फूटी ढीली भी देने वाला नहीं हूँ।” मुझे सब

मासूम है कि भाजकस वह चार लेकर चालीस मिल रहा है।”

मैं उन्हे केवल देखता रहा। जब उन्होंने एक साथ यह कह कर चुप्पी साधी तब मैंने विनीत स्वर में कहना शुरू किया, “बाबू जी। आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं हूँ चन्द्र, बीकानेर...”।

“अरे चन्द्र बेटा, आग्रो-आग्रो, प्रज्ञाब की माँ, देखो चन्द्र आमा ?”

जिन्दगी ने अपनी निर्बलता से जिसकी हर वस्तु छीन ली है, ऐसी कालवत् एक वृद्धा मेरे समझ लड़ी हो गई। उसने मुझे बोझी ढेर देखा फिर ममता भरे स्वर में बोली, “माँकों की जोत भी जाती रही बेटा, बड़ी मुश्किल से बेहरा पहचान पाती हैं, एक कपूत सारे कुटुम्ब की नेता को ढूँढो देता है। आ बेटा, आ तेरे लिए चाय बनाऊँ ?”

“नहीं माता जी, चाय पीने के बाद ही विस्तरा छोड़ता हूँ। बड़ी नहीं आदत पड़ गई है। प्रज्ञाब कहाँ है ?”

उसके बाप ने पगड़ी पहन ली थी। कोट को पहनते हुए वह बोले, “हमारे लिए वह भर गया और हूब उसके लिए भर गए। बेटा, हमने हमें कहीं का नहीं रखा, समाज में इतना जलीस करा दिया है कि हम गर्वन ऊँची उठाकर भी नहीं चल सकते। पन्ध्रह-द्वार का भुगतान करने के बाद मैंने अपना हाथ रोक लिया। शायद तुम्हें नहीं मासूम ? हो भी कैसे ? तुम्हारे जाने के बाद वह कुछ रईसबादों के फेर में पड़ा। उनसे मित्रता करने के लिए उसका मन लालायित हो उठा। अपनी हैसियत की परवाह किए बिना वह उनके साथ अनाप-भनाप खर्च करने लगा। धीरे-धीरे वह सबकों में जाने लगा। ताबा बेलने लगा। पहले एक आमा प्वाइंट और बाप में एक रूपया। जमा हुआ बंधा उखलने लगा। पत्र बन्द हो गया। प्रेस बिक गया। फिर वह रात-रात भर भर नहीं आता। यहू के गहने छुराने लगा और एक दिन एक झुण के झूँ में कई जुभा-रियों के साथ वह भी पकड़ा गया। सबबारीयों ने सबरें छोपीं, क्योंकि उसमें कई रईसबादे भी थे, मर्तीजा यह निकला की खानदान की शान सिद्धी में मिल गई।” उन्होंने गहरी सांस लेकर कहा, “मैंने सोचा कि

इस आघात से वह सुचढ़ जाएगा पर नहीं। वही बेढंगी रफ्तार। क्या करता ? खूब कहा-सुनी होती थी। धीरे-धीरे कर्ब बढ़ता गया उस पर एक दिन खूँवर साहब ने अफीम प्या ली।”

‘अफीम !’ मेरे मुँह से चीख सी निकली।

“हाँ घेठा, अफीम खा ली। साधार होकर मैंने १५ हजार का देना चुकाया और उसने सबके सामने यह कसम खाई कि अब वह कभी भी जुधा नहीं लेवेगा, पर कहावन है नीम को कितना ही घी से सींचो परंतु वह भीठा नहीं होगा, ठीक इसी तरह जिसका स्वभाव खँसा हो जाता है, वह मरने के बाद ही छूटता है। जो उमने गेरी कसम खाई। पर तीसरे ही दिन एक रात को नहीं आया। वहीं रफ्तार। साधार मैंने उसे घर से अलग कर दिया। बापब परिवार का बोझ उसकी कमर को झुका दे, पर सब व्यर्थ ? कुछ फल नहीं निकला। हाँ, मिर्ची की शादी तक गई। जुझारी को कौन साना बनायेगा ? तुम्हारी भाँ यह सबसा नहीं सह सकी। सारा स्नाय्म्य हार गई। छोटे बच्चों में एक अजीम-सी कूँडा आ गई है। हीनता के कारण वे घर से बँडे रहते हैं। घेठा, इस मौतान ने मेरा सर्वनाश कर दिया।’ और उनकी आँखें भर आईं।

मैंने उन्हें मान्दना देने के लिए कहा, “भाग्य बड़ा प्रबल होता है बाबू जी।”

“और दोष भी किये दिया जा सकता है ?”

तभी मिर्ची आ गई। बहुत बड़ी हो गई पी मिर्ची। जीवन की लज्जा उसकी आँखों में अमक रही थी। मैंने क्ली तुरंतान के साथ कहा, “मिर्ची, तू तो बहुत बड़ी हो गई।”

मिर्ची ने गर्दन झिपी कर ली।

“तू बड़ी खुदगर्ज बहन है। जाने के बाद कभी राखी ही नहीं भेजी ?”

उसने सहमते-सहमते कहा, “बाप पता भी देकर नहीं गये। आपको बिट्टी देनी चाहिए थी।”

तभी बाबू जी ने अवरोध उत्पन्न किया, “मिस्री, जा भैया के लिए चाय बना ही ला ।” मिस्री चली गई । उसका कलगायामित मुख मेरे सम्मुख बड़ी देर तक नागता रहा । प्रतियोगी की नीचे तैरती धड़ की छायाएँ, उदाम-उदास रेखाएँ । मेरा अन्तःस पसीज गया । चाय पीकर मैं जैसे ही बाड़ी के मुख्य द्वार पर पहुँचा वैसे ही मिस्री ने मुझे पुकारा, “भैया ।”

मैं रुक अन्दर गया था पर मैंने कोई उत्तर नहीं दिया ।

“भैया ! आप ही प्रज्ञाश्रम को समझाइए न, उसके कारण सारे परिवार पर संकटमा गया है । सभी दुखी है ।” उसका स्वर जरा रोगम-पूरित हो गया, “और मुझ पर जो कुछ का पहाड़ टूट पड़ा है । जेल के कदी की तरह जीवन हो गया है मेरा, हर अवयव पर माँ खड़ी रहती है गोया मेरा अपना कोई अर्थात्त्व नहीं, मेरी अपनी कोई नैतिकता नहीं, जैसे मैं अपना भला-दुरा जानती ही नहीं हूँ । हर बड़ी माँ मुझ से बली हुई सी बोलती है । शादी भैया के कारण चकी घोर उसका कुफल मुझे भोगना पड़ रहा है । जानते हैं आप, मेरी पढाई बीप में ही झुकवा दी, यहाँ मैं अब सेंट्रिक पास कर लेती... मुझे किसी से हँसकर बातचीत नहीं करने दी जाती है, यहाँ तक कि अपने छोटे से भी । सहैलियाँ कहती हैं कि तू आजन्म कुंवारी रहेगी । कुंवारी की बहन को अपने सेठिया-समाज में कोई भी बहू नहीं बनाएगा और बाबू जी मुझे अभागी निरमागी ही कहते रहते हैं । मैं आपको ज्ञान जोड़ती हूँ कि आप भैया को समझाइए, उससे कहिए कि आप जिस मिस्री के लिए प्रास देने को तत्पर रहते थे, उसकी जरा बुबुआ तो देखिए ।” मिस्री की आँखें सजल हो गईं । मेरा मन भी जाली हो गया । तभी ‘मिस्री-मिस्री’ की कर्कश बुलाहट हुई और मैं उससे बिदा लेकर चला आया । आते-आते प्रज्ञाश्रम का पता भी पूछ आया ।

चौथे रोज मैं प्रज्ञाश्रम के घर पहुँचा । सुबह थी, ताजा सुबह ! एक छोटी सी बाड़ी में वह एक कमरा लेकर रहता था । कमरे की पिछली



दीवार सीमन से गीली थी। इन छः वर्षों में उसके दो भेटियाँ और हो गई थीं। उसकी बहू असीठी में आलू उवाच रही थी। उसकी देह पहले जैसी ही मोटी ली। मुझे देखते ही वह क्षण भर हक्की-गक्की रही, बाद में विस्मय भरी गुस्कास बिखेर कर बोली, "कब प्राण प्राण ? हमारी बहन को प्राण या नहीं ?"

उसने मेरे लिए एक बोरी बिछा दी। मैं उस पर बैठता हुआ बोला, "नही, अकेला ही आया हूँ। दिल्ली में अचानक विचार हो गया था।"

"क्या बहाना बनाते ? जानबूझ कर नहीं जाते, भाव सभी सर्व एक से होते हैं ?"

पता नहीं क्यों मुझे भजाऊ भूखा ? मैंने हँसते हुए धीरे में कहा, "मैंने एक से न होते तो जान बुझी न पड़ जाती ?"

भाभी प्रेमा एकदम उदास हो गई। मेरे भजाऊ का उसके हृदय पर कोर का आघात लगा। वह चुटकी हुई सी बोली, "भाप मुझे कितनी भूखी मारते रहेंगे, मैं तो मोटी ही होऊँगी। अब भाप ही देखित न ? कितना काटवायक जीवन है ? इनके पीछे मेरे पीछर वाले भी मुझ से सीधे भूह धात नहीं करते। उन्होंने भी उन्हें समझाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी, किन्तु इनमें फिर पर जान देपता जो या बिगलें हैं, भली बात को सुनते ही नहीं ! बस, उल्टी ही उल्टी। कसमें और प्रतिज्ञाएँ इनके लिए कुछ भी नहीं। कई बार पहले माँ ने भी खिपे रूप से मेरी मदद की पर अब वह भी बन्द हो गई। मेरे पिता जी का कहना है कि तू ऐसे आचारा-सफ़ाई को छोड़कर अपने घर क्यों नहीं आती ? मैं समझ भूंगा कि तू विधवा है।" पर मैं इन्हें छोड़ कर नहीं जा सकती। -  
 बुरे दिन में ही पत्नी की परीक्षा होती है। कुछ भी हो चन्द्र भैया आखिर वह है तो मेरे पति ? यह-वक्त के सामने आज तक किसी की नहीं खली है ? वह कोई सुपी भोड़े ही है ? कभी बिलबिलाते बच्चों को देखकर रो पड़ते हैं पर बुआ छोड़ नहीं सकते।"

प्रह्लाद आ गया था। उसके साथ भिभी। मुझे देखते ही वह बिगड़

पड़ा, “तुम्हें धेने गना किया था फिर भी तुमने अपने मन की पूरी की। तुम्हारी यह प्रवृत्ति मुझ से सहन नहीं हो सकती।”

मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, “अपनापन मुझे यहाँ तक खींच लाया। पिछले सौहार्द और धनुष्य ने विवश कर दिया। प्रह्लाद ! जुमा सेलना छोड़ दो।” मेरा स्वर अगस्त में भारी हो गया।

“नहीं छूटता जन्म, नहीं छूटता। तुम समझते हो कि मैंने चेष्टा नहीं की। बहुत की पर हर रात हिस्टिरिया के रोनी की तरह मेरा मन छुए के अड्डे पर जाने के लिए छलपटाने लगता है। बीबी का अनुरोध, बच्चों की दयनीयता और घर की समाही सभी कुछ उस नखे के पीछे गीरा हो जाते हैं और मैं...।” वह एक दम रुक गया, “तुम यह नहीं जानते कि मैं मिस्त्री को कितना चाहता हूँ। इस बहन को मैंने फूलों की शाली की तरह अपने इन हाथों से पाला-पोसा है। इसके एक-एक मांस को धुबाने के लिए मैंने ली-ली मुसकान बिखेरी है। किंतु क्या करें ? इसी बहन के जीवन को मैंने जहर बना दिया है। मैं इसके त्तों की पूज जागता हूँ पर मेरी परवशता सबसे अधिक शक्तिवान और क्रूर है।”

वह पश्चात्ताप की भाव में बल रहा था। कमरे में ससाटा छा गया। मिस्त्री की आँखें भरी-भरी थीं हो गईं विफल-विषाद चारों ओर व्याप्त हो गईं।

मैंने आत्मविश्वास के साथ कहा, “अमुक्त तत्पर हो तो प्रत्येक अव-गुण छोड़ा जा सकता है। संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है।”

वह तरस भरी हँसी हँस पड़ा, “सूक्तिमयी बोलने में बड़ी सहज होती है पर प्रयोग में उतनी ही मुश्किल है। और, जब तुम सभी लोग ऐसा ही समझते हो तो शयन करते रहो। मैं जुमा मरने पर ही खोजूँगा। अब तुम जा सकते हो।”

मैंने भावें हुए मुँह से कहा, “तुम्हारे साथ कोई मजबूरी नहीं है, तुम बसमाजी पर उतर आये हो और जो व्यक्ति बसमाजी पर उतर आया है, उसे कोई भी मही रास्ते पर नहीं ला सकता।” मैं हवा की

तरह चला आया।

सगभग मात माह बाद मैं एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए कलकत्ता पुनः आया। सम्मेलन से निवृत्त होने के बाद एक दिन हम लोग चौराही पर ब्रूम रहे थे कि एकाएक मुझे प्रह्लाद की सुरत से कुछ मिलता-जुलता कोई व्यक्ति दिखाई पड़ा। उसे देखते ही मुझे प्रह्लाद याद हो आया। दूसरे दिन मैं उसी छोटी सी बाड़ी में पहुँचा। वहाँ से माधूम हुआ कि प्रह्लाद वहाँ से चला गया है। मैंने सोचा कि शायद किराया न चुकाने की वजह से मकान-मालिक ने उसका सामान नीलाम करा दिया होगा। मैं उसके बाप की बाड़ी गया।

द्वार पर सूखा-सूखा सा एक इन्सान मुझे दीखा। उसकी बाड़ी बड़ी हुई थी और उसने मैली-सी धोती पहन रखी थी। उसकी आँखें भीतर भँसी हुई थीं और वह बूढ़ा-सा लग रहा था। मैं उसके सामने खड़ा हो गया। वह सूखी मुसकान के साथ बड़े ही धीमे स्वर में बोला, “भाभो बन्ध, कब आए भैया? बाबू जी ऊपर हैं। मैं बोड़ी देर में आता हूँ।”

मैं उसकी गम्भीरता के समक्ष कुछ भी प्रश्न नहीं कर पाया। छुप-चाप ऊपर चला गया। एक प्रजीब-सी उदासी वहाँ के वातावरण को घेरे हुए थी, बुटन और तड़प। बाबू जी हिसाब-फिसाब में तल्लीन थे। मैंने उसका ध्यान भंग किया। वह मुसकराते हुए बोले “भाभो बेटा भाभो, कब आए?”

“कुछ दिन हो गए।”

“और आए हो अब?”

“फुर्सत नहीं मिली।”

“बैठी, चाय तो पीओगे न? अरे मैं भी क्या हूँ, इसके लिए तुम्हें पूछ रहा हूँ। प्रह्लाद की माँ! चाय तो बना ला।” और वह बोड़ी देर तक स्तब्ध से बैठे रहे। मुझे निहारते रहे। मेरे देखते-देखते उनकी आँखें भर आईं। मैंने संकित होकर पुछा, “क्या बात है बाबू जी?”

बाबू जी ने थुक निकसते हुए बड़ी कठिनाई से कहा, “पिछली बार

तुम्हें मिन्नी ने चाय पिलाई थी और भाव मिन्नी - ।”

“क्यों, मिन्नी को क्या हुआ ?” मैंने व्यग्रता से पूछा ।

“मिन्नी हमें सदा के लिए छोड़कर चली गई ।”

मैं पत्थर हो गया । बाबू जी मेरे सामने आठ-आठ आँगू बहा रहे थे । माँ भी आकर रोने लगी थी । कितने क्षण बीते, मैं नहीं जानता, परन्तु जैसे ही मैं होश में आया मैंने अनुभव किया कि मैं रो रहा हूँ । मैंने लंबे स्वर में कहा, “क्या हुआ मिन्नी को ?”

“मैं बताऊँ ?” रंगमंच के अभिनेता की तरह प्रह्लाद ने कमरे में प्रवेश किया । मेरी प्रश्नभरी आँखें उसकी ओर उठ गईं । वह लड़ा-खड़ा जलते स्वर में बोला, “मैंने उसे मार दिया । मैंने उसकी हत्या कर दी । मेरे जुझारी ने उस कली के सारे सपनों को मिटा कर रख दिया ।”  
“अब ? अब मैं जुझारी नहीं हूँ । मैंने जुमा खेलना बन्द कर दिया । अब मैं नौकरी करता हूँ पर वे दो माँखें ? नहीं, नहीं, मैं उन्हें नहीं सुल सकती । मिन्नी की भाँखें नहीं भूली जा सकती ।” और वह अवोध बालक की तरह रोता हुआ भीतर चला गया ।

चाय के प्याले ठंडे हो गए ।

मैं उन्मत्त-सा उठा, भाभी के पास गया । भाभी बेचारी झुर-झुरकार पिंजर हो गई थी । बेहूरा सभरी हुई वृद्धियों की वजह से कुत्सलाने लगा था । मैंने कृत्रिम हँसी के साथ अनिच्छा से परिहास किया, “अब क्यों दुबली हो रही हो ?”

भाभी कुछ देर मेरी ओर देखती रही और बाद में सिड़की की राह घमस्त पर वृद्धि मौला कर बोली, “पता नहीं क्यों, आपके भैया के इस रूप का मुझे उस रूप से अधिक भय लगता है ? यह प्रणाम्य क्षान्ति, यह अक्षण्ड मौन, यह एकरसता और यह उदासीनता, सब मैं उनके इस प्रयुक्त परिवर्तन में हर जगह चिन्तित रहती हूँ । हर जगह आशंका बनी रहती है कि कोई अशुभ होने वाला है, कोई आघात होने वाली है । अब भैया, अब यह सहन नहीं है ।”

‘वह सहज भी हो जाएगे। बहुत का ध्यान है न?’

‘हाँ, मिन्नी ने आत्महत्या की.....।’

“आत्महत्या?”

‘हाँ।’ उसने टूटते स्वर में कहा, “उस रात जोर का तूफान आया था, भयानक तूफान! तूफान के साथ बादलों की भयावह गर्जना, मूसलाधार वर्षा! तब मिन्नी बाई इस कमरे में अकेली सोती थी, पता नहीं कब वह बाहर गई और कब उसने छत से कूब कर प्राण दिए, यह उस भयानक रात को कोई भी नहीं जान सका। बाबू जी को सुबह ही पता चला। हुंमामा मच गया। हमें उस बाड़ी में बुलावा धाया। सुनते ही वह बेहोश हो गए। बड़ी मुश्किल से वहाँ लाए। हाय! कितना भीमरस हृदय था? मैं उन्हें नहीं देख सकी। और वह पागलों की तरह हाहाकार करने लगे। इन्होंने अपना सिर फोड़ दिया, सूखित हो गए। मिन्नी बाई ने मरने के पूर्व एक पत्र लिखा था, अपने भैया के नाम।”

भाभी उठी और वह पत्र निकाल कर ले आई। खोलकर पढ़ने लगी—

भैया। मैं सदा क लिए जा रही हूँ। बहुत एक सोम किरिया होती है, एक न एक दिन उसे दूसरे की बगिया में जाना ही पड़ता है। हँसती, गाती, उड़ती, महकती सभी का अद्भुत अनुदान लिए हुए वह दूसरे की झूलझुली बन जाती है। रूप का साह, भाँ की ममता और भैया का झुलार सभी कुछ उसके समुदाय की विवाह के समय उसके अस्तित्व के केन्द्रीभूत हो जाते हैं। और मेरी इस अनन्त यात्रा की बेला में सभी का प्यार मेरे साथ है किन्तु तुम्हारा नहीं। क्योंकि तुम शैतान के हुक्म से चलते हो, तुम्हारे भीतर का इंसान मर चुका है। तुम से प्रार्थना है कि मेरी अर्थाँ को अपने दिल में उस शैतान को बधाए हुए मत खूना। शैतान का स्वर्ण मेरे परलोक को भी इतलोक की तरह बिगाड़ देगा। भगद धूमो दो अपने भीतर गए इतलोक को जन्म देकर जो मुझ जैसे अभागी बहुत का जीवन न से बल्कि उसे सुगों-सुगों तक चुगरियाँ भोकाता रहे। जिसके स्वर्ण से अलौकिक आनन्द मिले.....भैया। मरने

के पहले मेरे मन में किसी का दुख है तो तुम्हारा ! तुम मुझे यत्नपन में मिल्नी कहते थे । जानते हो, मिल्नी (बिल्ली) की आँखें कितनी तेज होती हैं, अँधेरे में भी चमकती हैं, उस मिल्नी की वही-वही आँखों को झूमकर उसे आकाश में उछाल दिया करते थे और मैं धम से तुम्हारे हाथों में गिर जाती थी । खिलखिलाकर हँस पड़ती थी और तुम्हारा नेहरा मेरी खिलखिलाहट को देखकर फूल-सा खिल जाता था । उस मिल्नी के जीवन को तुमने कितना गौरव और निर्वन्ध बना दिया । उसका हर क्षण मुझे उत्पीड़ित करता रहा । 'वेचना पहुँचाता रहा ।'..... '.....'क्या कष्ट भैया, बायब तुम्हें मेरी पीर का अहसास नहीं है किन्तु मुझे तुम्हारी कुर्बाना और निर्लज्जता ने विकल और उन्मत्त बना दिया है । मेरे जिधे यह असह्य है, सीमाहीन है । कुछ दिन पूर्व मेरी एक सहेली ने रनेहसिकता स्वर में कहा, "धारी मिल्नी 'त्या तु आनन्ध कुँवारी खेगी ?"

मैंने कहा, "क्यों ?"

"कुमारी की बहुत किरी घोर की बहू ही न सक्ती है । मला भावनी उसे अपने घर में पाँव नहीं रखने देगा ।" और मैं इसर बेस रही हूँ कि उसका कबल मरव हो रहा है । मुझे फोर्स भी अपनेना मे सँवार नहीं । तुम्हारा साया हर जगह बड़ा रहता है ।..... और तुम्हारी छात्रणी बहुत किसी घोर की बहू बने, यह तुम गह सक्ते ?।।।।। मैं नहीं । इसलिए मैं सदा-सदा के लिए जा रही हूँ । बाहर भीतर सुफल है । बावलों की गर्जना से जग रहा है कि आज के पृथ्वी पर अज्ञात गरीबी कहुर जाने पाजे हैं । सुनती आई हूँ—जब देवता जगते हैं तब ऐसी प्रलयकारी बड़ी होती है । कुछ भी हो, मेरे लिए दोनों ही लाभदायक हैं । अच्छा भैया, अन्तिम बार प्रणाम । सुनो, तुम मेरी आत्मा को मत छुना । मैं को तो तुमने पहले ही मार-सा दिया है । उम्मेद नैबो की उपयोगिता खीन ली है । ओह ! तुम कितने हृदयहीन हो गए हो । ..... अन्तिम बार तुम्हें ही प्रणाम । क्यों हृदय तुम्हें मार-मार प्रणाम करता

है ? आत्महत्या मैं अपनी इच्छा से कर रही हूँ। भीत की पंक्ति इस समय कान में गूँज रही है: "भैया मेरे राखी के बन्धन को निभाना, याद का दीपक जलाना ... जलाना, भैया मोरे .. "

भैया कलेजा फट गया। भाँसू भर-भर वह चढ़े। भाभी खत पढ़ते-पढ़ते कई बार सिसक पड़ी। मैंने उससे कहा, "भाभी ! मिन्नी कितनी प्यार की प्यास लिए मरी है।"

भाभी ने तब समेट कर रख दिया। अभी प्रह्लाद आया। मुझे रोते हुए देखकर वह सब कुछ समझ गया। रोदन मरी मुस्कान के साथ बोला, "भारे पगले, उठ, उसके लिए मत रो, वह मेरी आत्मा में जिया है।..."  
मैं ने तुम्हारे लिए दुबारा चाय बना ली है। अब..... अब न।" और उसकी भाँखें भाँसुओं से भर आईं। मुझे लगा कि यह सचमुच नया इंसान जन्म ले रहा है।

---

## गोमली

झोपहर । ललती धूप । स्तब्ध हवा । घुटन और  
उमस । शून्यता की ओर उदासी ।

ऐसे अप्रिय मौसम में गोमली कुएं की बायीं छतरी से  
निकली । उसके तिर पर लोहे की कढ़ाई थी । उसमें अपने  
भरे थे ।

कुआ । गन्ध और जर्जर । उसके दाँये-बाँयीं दो छतरियाँ ।  
बनावट सामन्ती । ऊपर के गुस्सब खिन्न । लगे थे—सब  
गिरे, सब गिरे ।

सूनी पगडंडी भयानक गर्मी के कारण और सूनी हो  
गयी थी । कुएं के पास-पास कोई बस्ती नहीं थी । थोड़ी दूर  
पर थी निम्न जातियों की बस्ती । सासी, स्वामी, भाट और  
सुनार भी ।

गोमली सुनारिन थी ।

अपने मुहल्ले की सबसे बड़नाम और जरिवहीन युवती ।  
उसने अपने पति के रहते हुए एक साईस से प्रेम कर लिया  
था । प्रेम ही क्यों, उसने उसके सग लया कर लया लिया था ।  
चूँकि साईस गुप्ता था इसलिए मुहल्ले के खरीक लोग मूँह पर  
ताले लगाते हुए थे । अगर वह कमजोर होता, तो मुहल्ले  
वाले उसका इस तरह रहना डूबर कर देते । अब्बे इसना तंग  
करते कि मुहल्ला छोड़कर जाता ही पड़ता । गोमली को कुछ



कहना तो दूर रहा, बल्कि गुहस्त्रे वालों के हृदय में यह भाशंका थी कि कहीं गोमती को कुछ कह दिया तो साईस बाधू खून खराबी पर उतर आयेगा। इसलिए वे सभी बेमन से गोमती की इज्जत करते थे, वितली एक सच्चरित्रा की। जैसे गोमती गुहस्त्रे के दुस-दरब में काम आती थी। हर एक के संकट में आगकर जाती थी।

बाधू विधुर था। उसकी बीबी जीवन-यात्रा की वो मंजिमें तय कर एकदम झूट गयी थी। विवाह के दो वर्ष बाद उसे हल्का-सा सुखार आया। रात को बाधू ने उसे दूध पिलाकर सुलाया और मुबह उसकी नींद, अमर नींद बन गयी। बाधू को उसके लिए पश्चात्ताप था, पर उसकी आँखों में आँसू नहीं आये थे क्योंकि उसे अपनी जोर पसन्द नहीं थी। उसके मन-मार्ग में गंगे सुनार की जयान बहू गोमती का रूप बन गया था। यह मुख हुआ छत पर बैठा रहता था। उसे महसूस होता था कि गोमती छत पर अपने बाल सुला रही है। उसके बाल इतने लम्बे हैं कि वे कमर के नीचे तक चले आये हैं। उसके बालों को देखकर उसे उन कहानियों पर विश्वास होने लगा कि एक राजकुमारी हर रात सिक्की से अपने बाल जटका देती थी और उसका प्रेमी उसके महल में केश पकड़कर जाता था। कभी-कभी उसे भय-सा होता था कि तुम में उसके बालों के इन की खुशबू बसकर उसे 'मरहोश' कर रही है और वह प्रतिभा-सा निपथल बैठा रहता था।

गंगला बुझा-पतला और हुरामसाऊ था। वह बिना मेहनत के जीवन गुजारना चाहता था। इतना ही नहीं, बुरी संगत के कारण अफीम भी खाता था। अफीम की पिनक में वह निर्जीव-सा पड़ा रहता था और गोमती को रोज के पूल बिना छुए ही मुरझा जाते थे। वह गंगे को कुछ नहीं कहती थी। बूचट में लिपटी वह फोहू के बेल का तरह काम करती रहती थी। पुबह वह उठकर कुर्छ से पानी के सटके खाती थी। बाजार से लीया जाती थी। चक्की पीसती थी। गोबर आपत्ती थी और बाद में वह ऊन कातने मली जाती थी। बूचट वह कभी

नहीं उठाती थी। स्त्रियाँ उसे सजीली कहती थी और ऊन के कारखाने का मासिक सेठ मनोहर सदा उम्र पर बिछ-हट्टि लगाये बैठा रहता था। किन्तु गोमली ने उसे कभी भी अवसर नहीं दिया। गोमली अपने काम से काम रहती थी। उसे मजदूरी से नास्ता था। हाँ, वह धाबू ने जहर परेशान थी। धाबू उसे छत से झूट्टा करता था। रास्ते में घेरकर प्यार की प्रार्थना करता था। तब वह भयभीत हिरनी-सी खड़ी रहती थी। वह उसकी किसी बात का उत्तर नहीं देती थी। धाबू उसके मीन से परेशान हो जाता था।

अपनी पत्नी की मृत्यु के दो माह बाद धाबू की दशा एक उन्माद-ग्रस्त प्राणी-सी हो गयी। उसे लगने लगा कि वह पागल हो जायेगा। उसका सिर बिना गोमली के फट जायेगा। उसे उठते-बैठते गोमली का मुँहवा लहंगों के बीच भिलभिलाते धाँव की तरह खगने लगा। आखिर एक दिन गोमली का हाथ पकड़ ही लिया।

ऐसी ही एक दोपहर थी। जलता आकाश और जलती पृथ्वी के कारण पशु-पक्षी भी नहीं दिख रहे थे। उस समय गोमली लाल झोढनी में अपना सौन्दर्य झलकाती बाजार आ रही थी। धाबू ने उसको पकड़ अपने घर में लीच लिया। वह कुछ बोले, इससे पहले ही उसने उसके सँह पर हाथ रख दिया। वैसे गोमली उसकी गुण्डागर्बी से आर्तनाद भी ही।

गोमली ने पहली बार अपना मीन तौड़ा। वह आकुल-सी एक कोने में खड़ी हो गयी। उसके गोरे लसाद पर पसीने की बूँदें चमक उठीं। उसकी मील-सी गहरी ध्यारी आँखों में अपरिशील कुछ भलक साया। वह कम्पित-स्वर में बोली, "परायी इन्दी के साथ खबरबत्ता (बलात्कार) करना बर्ग नहीं है।"

धाबू ने अपने हाथों को जुड़ी तरह झटकाकर कहा, "मे तुम्हें चाहता हूँ, मैं तुम्हारे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। रात-दिन तुम्हारा मुँहवा मुँहवा गोमली!" और वह भागे लगा। उसकी बाँहों ने गोमली के रेशमी

शरीर को लपेटना शुरू कर दिया। गोमली ने बड़ी दीनता से कहा, "भगवान ने तुम्हें ताकतवर इसलिए नहीं बनाया कि तुम दूसरों की इज्जत को धूल में मिलाओ, भले आसमियों की पगड़ियाँ उछालो। यह अन्याय है बाधू! दिल को प्यार से धीतो, लकरार से नहीं। अगर तुमने मेरे संग जबरजस्ती की तो मैं अपने शरीर को भाग जगाकर मर-मिट जाऊँगी।" गोमली की आँखों में आँसू उभर आये। वह जोर से सिसक पड़ी। सिसककर उसने बाधू की ओर देखा। बाधू को लगा संसार की सारी व्यथा गोमली की आँखों में है। धीरे-धीरे वह क्षिप्त होने लगा। उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसकी वासना की विनगारियाँ बुझने लगीं। वह हवा की तरह गोमली के सामने से हट गया।

गोमली को गंगले से शिकायत थी कि वह बाधू को डाँटे कि वह उसकी बीबी को भाते-जाते न छेड़ा करे। गंगला गया भी बाधू के पास। पर बीबी की शिकायत न करके वह उससे दो रूप उधार माँग लाया। उन दो रूपों की उसने खूब शराब पी। उस शराब के मत्ते में उसने बाधू की बड़ी प्रशंसा की और बोला, "वह एक शरीफ आदमी है। आज उसने मुझे मिलाया।" गंगले के नेहरे पर निर्वज्जता नाच उठी।

गोमली का मन अपने पति के प्रति घृणा से भर आया। उसे लगा कि यह कैसा मर्द है! हसमें जरा भी नैरत नहीं। कायर और पीछपहीन!

धीरे-धीरे गंगले में परिवर्तन आने लगा। आजकल उसके पास पर्याप्त पैसा दिसता था। जब कभी भी गोमली पूछती थी, वह कहता था, "आजकल मैं सेठ मनोहर के यहाँ काम करता हूँ।" गोमली ने मजदूरी पर आना बन्द कर दिया। जब उसका पति कमाता है, तो वह औरों के यहाँ मजदूरी करने क्यों जाय?

इधर उसने बाधू के जीवन में बड़ा परिवर्तन देखा। आजकल वह बहुत सवारे वागा लेकर मजदूरी करने चला जाता था। किसी से झगड़ा-फसाव नहीं करता था। उसकी ओर देखता तक नहीं था। उस दिन की-

घटना के बाद गोमली के हृदय में एक कोमल भावना जन्म गयी थी—  
 बाधू के सद्व्यवहार और उपेक्षा से और सजीव व सुस्तर हो गयी।  
 कभी-कभी गोमली के मन में यह प्रश्न जाग जाता था, “भाजकस बाधू  
 छत पर क्यों नहीं आता, उसकी ओर क्यों नहीं देखता ?” वह तब घंटों  
 छत पर बैठी रहती थी। किन्तु बाधू छत पर नहीं आता था। आता  
 भी था तो उसकी ओर नहीं देखता था। इससे गोमली के मन में  
 अपमानजनित पीड़ा की लहर उठ जाती थी। वह आदेश में उन्मत्त-सी  
 हो जाती थी। उसकी इच्छा होती थी कि वह बाधू का हाथ पकड़कर  
 डाँटे कि वह उसकी ओर क्यों नहीं देखता ?

कल तो उसने हठ कर दी। वह स्नान करके छत पर पड़ी। बाधू  
 छत पर फाड़ू लगा रहा था। गोमली सदा की तरह नहीं लगायी।  
 वह कुछ क्षण तक फाड़ू लगाने में तन्मय बाधू को देखती रही। देखते-  
 देखते उसका मन कठगुला से भर आया। वह भावनाबिभूत हो उठी।  
 उसने जोर से खंखारा। बाधू ने उसकी ओर एक उड़ती नजर फेंकी  
 और वह अपने काम में तन्मय हो गया।

गोमली जल गयी। गुस्से में भर उठी। साथ ही एक विचित्र  
 काव्यमय भावना से उसका अन्तर भर आया। वह साड़ी सुझाकर,  
 नीचे आ गयी।

बोपहर।

भाज बाधू जल्दी आ गया था। वह हाँगा खोलकर घोड़े की सारिवा  
 करने लगा।

गली में सञ्जाटा था। शुन्यता थी। वह सारिवा करके घोड़े को कुएँ  
 के पास ले गया, पानी पिलाने। तभी उसने देखा—गोमली सिर पर  
 भटका रखे आ रही है। उसने अपनी दृष्टि सूने आकाश की ओर की।  
 गोमली आयी। उसने हीच में भटका भरा। बाधू के मन में अन्तर्हस  
 मच गया। उसकी इच्छा हुई, वह अगस्त्य मुनि की तरह एक दृष्टिपूर्व  
 में गोमली के सौन्दर्य-सागर को पी ले, पर उसने अपने मच के सौन्दर्य

को रोक लिया। वह सब कुछ हारे हुए जुआरी की तरह चला।

दो कदम भी नहीं गया था कि गोमली ने पुकारा, "मिजाज बहुत बढ़ गया है! आँस उठाकर देखते ही नहीं!"

धाधू के पाँव रुक गये।

"मटकी तो जैवी कर दो।"

धाधू उसके पास आया। मटकी को उठाया अणगर में उसकी दृष्टि उसके चेहरे से मुँह पर लगी। गोमली के होठों पर शैतानी भरी मुरकान धिरक उठी।

"तुम मुझ से बाराज हो?"

"नहीं।"

"फिर आजकल इतने बदल क्यों गये हो?"

"तुम्हें पाने के लिए।" कहकर धाधू जल्दी से नीचे उतर गया।

गोमली ठगी-नी लड़ी रही। फिर वह लकी बहुत धीरे, मानो उसके मन ने धाधू के प्यार को रबीकार कर लिया हो।

अबेरा भजगर की तरह कच्चे-छोटे भकानों को भपने लीज गया था। धाधू बारह बजे बासा सिनेमा खत्म करके आया था। वह थोड़े के शरीर पर हाथ फेर रहा था। हाथ फेरकर घर में भीतर गया। डिबरी जलायी।

तभी उसे कपड़ों की ग्राहट सुनायी पड़ी।

"कौन?"

"मैं।"

"गोमली!"

"हाँ।"

"इतनी रात गये?"

"मन नहीं आना। धाधू, तुमने मुझे प्रेम से जीत लिया। मैं हार गयी। मैं हार गयी। वह रुपासी होकर उसके परखों में बैठ गयी।, उसके चेहरे की वासनाज्वित उसेजना और चहिनता डिबरी केहरे के

पकाश में स्पष्ट सक्षित हो रही थी ।

“गोमली ! तुम बादीबुदा हो ।”

“ध्वार के बीच बादी बीवार नहीं बन सकती ।”

“तो मुझे बहुत चाहती हो ?”

“न चाहती तो इस तरह तुम्हारे पाँव पकती ?”

“किन्तु !”

“मुझे अभिक मत सताओ । मैं सबकुछ हार गयी ।”

“फिर तुम मेरे पास सदा के लिए बनी आओ । छोड़ दो अपने पति को ।” बाधू ने बीवार की ओर मुँह करके कहा ।

गोमली की वासना एकदम तायब हो गयी । वह झट से खड़ी होकर बोली, “क्यों ?”

“मैं चाहता हूँ, तुम रातों मेरे साथ रहो ।”

“नहीं-नहीं-नहीं ।” वह एकदम पीस-सी पड़ी ।

“पकौती भी रहते हैं ।” उसने गोमली को सावधान किया ।

“कोह ! तुम गुण्डे के गुण्डे ही हो । तुम्हारा विल पत्थर का टुकड़ा है ।” और गोमली बनी आयी ।

बाधू की बड़ी गति थी । बड़ी मोन और बड़ी अन्तर्मुखता । अपने काम से काम । पर गोमली ने अपने हृदय की आवाज के विद्वज अगाधता कर दी । उसने भी बड़ी रज्ज्या अभितयार कर लिया । वह भी पाछू से नहीं बोलेंगी । वह गुण्डा है । उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं आया । वह उसे भरे बाजार में बबनाम करना चाहता है । नहीं, वह ऐसा नहीं करेगी ।

किन्तु एक बटना और बटी ।

बाधू किसी बरात में बाहर बसा गया था । गंगसा उस रात मफीम की पित्तक में होते हुए भी जान रहा था । जवसग बारह बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया । गंगसा उठा । उसने किवाड़ खोले ।

“आ जये मनीहर बाधू ?”

“हाँ।”

“मैं लोटा लेकर जंगल जाने का बहाना बना रहा हूँ। आप....।”

“कही.....।”

“आप चिन्ता न करें, वह कुछ भी नहीं कहेगी। मैंने सारी बात कर रखी है।”

“जी तुम्हारा सारा कर्ज माफ कर दूँगा।”

“और पचास रुपये की बात?”

“नह् भी दूँगा।”

गंगला चला गया।

चोंवली के घुंघले प्रकाश में सोयी हुई गोमली का नेहुरा साफ़ दिखाया था। मनोहर उसके पास बँठ गया। गोमली ने आँखें खोल दीं। देखा तो भटके के साथ खड़ी हो गयी।

“तुम कीन हो?”

“मेरे मुँह नहीं पहचाना। क्या तुम्हें गंगले ने नहीं बताया कि प्राण मैं यहाँ आगे वाला हूँ?”

वह गंगले की ओर झपटी।

“वह बाहर चला गया है।” सेठ मनोहर ने हँसकर कहा, “कल से मैं तुम्हें दाहर के बाहर वाली कोठी में रखूँगा। यहाँ मुझे बाघू का बड़ा डर लगता है।” कहकर उसने गोमली का हाथ पकड़ लिया।

गोमली के तन-बदन में आग लग गयी। उसने कड़ककर कहा, “भला चाहते हैं तो इसी समय वापस जाइये।”

“और मेरे रुपये?”

“मैं कहती हूँ, थोड़े जाइये। वहाँ मैं शोर कर दूँगी। आधमियों को इकट्ठा करके आपको जलील करा दूँगी।”

“ब्रह्म ! असम बुझाता है और दीवी भगकी देती है। गोमली, मैं सेठ हूँ। बाघू के साथ रहने से तुम दुखों के सिवाय कुछ नहीं पाओगी। मेरे संग चलो, आनन्द ही आनन्द मिलेगा और तुम्हारा पति भी वहीं

चाहता है ।”

“प्राप चले जाइये ।” उसने भड़ककर कहा ।

सेठ बदनामी के भय से चला गया । उसके जाते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी । गगला धाकर चुपचाप सो गया । उस रात गोमती को नीव नहीं आयी । रोते-रोते उसकी आँखें सूख गयीं । सुबह भंगले ने बेहयाबी से कहा, “चाय ?”

गोमती ने उसकी ओर जलती दृष्टि से देखा और चाय बनाने लगी ।

धाधू लौट आया । उसने कई बार गोमती से मिलने की चेष्टा की पर वह नहीं मिल सका । आखिर बात क्या है ? उसका हृदय बड़कने लगा । वह गोमती को बाँदी की तख्तरी देना चाहता था जो उसे बरात में मिली थी । वह तख्तरी बहुत सुन्दर थी ।

आखिर रात हो गयी । रात भी टल गयी । दूसरी सुबह आयी । वह अपने मन को नहीं रोक सका । जैसे ही गंगला जगल गया, जैसे ही वह गोगली के पास जा पहुँचा । वह ‘गंगला-गंगला’ पुकारता हुआ दर में घुस आया । सामने ही गोमती बैठी थी—मुरझाये फूल-सी । वह उसे देखकर हतप्रभ हो गया ।

“क्या तुम बीमार हो ?” उसने प्रबन्धनी दृष्टि से देखकर पूछा ।

वह चुप रही । उसने अपनी दृष्टि दीवार पर जमा धी और पाँव के धँपूटे से जमीन घुरेवने लगी ।

“कुध क्यों हो ? बोलो न, तुम्हें मेरी कसम ।”

गोमती फूट-फूटकर रो पड़ी । उसकी सिसकियाँ हृदयविदारक थीं । धाधू ने उसे अपने सीने से लगाकर कुसारा ।

“क्या बात है गोमती ?”

गोमती ने रोते-रोते सारी बातें सुनायीं । धाधू का मन क्रोध से भर गया । तख्तरी को अभीन पर फेंकता हुआ वह बोला, “मैं उसकी जान निकाल दूँगा । उसके टुकड़े-टुकड़े कर, दूँगा ।

गोमती काँप उठी ।



“मे उसकी भाँखें निकाल दूँगा। तू चिन्ता न कर, मैं तेरा बदला लूँगा।” कहकर बाधू बाहर चला गया।

गोमली विमूढ़-सी सड़ी रह्यो-दो पल। जब बाधू उसकी भाँखों से ओझल हो गया तब उ। होश आया। वह बाहर की ओर भागी, किन्तु बाधू चला गया था। वह क्या करे? वह किस तरह बाधू को रोके? वह संवर में पड़ी नाव की तरह झूलती रही। फिर वह सेठ के ऊन के कारखाने की ओर भागी।

वह जैरे ही वहाँ पहुँची, उसने देखा—वहाँ भीड़ जमा थी। बाधू को कई आदमी पकड़े हुए थे। सेठ के सिर से खून बह रहा था। बाधू के कान के पास भी खून की धारा बह रही थी और बाधू कह रहा था, “भागो ये छटा रास्ते से गुजरना तो सेठ, जिंदा नहीं छोड़ूँगा। भीम की तरह तेरा खून पी जाऊँगा। गोमली को बेसहारा मत समझना।” और वह घोर की तरह वहाँ-वहाँ घूमता हुआ लौट आया। गोमली भी वहाँ से तुरन्त भयुर्य हो गयी थी।

जब उसने घर में कदम रखा तब गोमली को उसने वहाँ बैठे पाया। वह उसे प्यार भरी नजर से देखता रहा, देखता रहा। खून की बूँदें भ्रम भी भू-भूकर उसकी अनियाम पर पड़ रही थीं। गोमली का हृदय प्यार से भर आया। भाँखें भाँखुओं से भर आयीं। वह बाधू से लिपटकर बोली, “मैं सदा के लिए तुम्हारे पास आ गयी हूँ, मैंने पिछले सारे नाते-रिश्ते तोड़ दिए हैं। अब मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। मैं तुम्हारी ही परनी बनने के कामिल हूँ। इस रूप की रक्षा तुम्हीं कर सकते हो।”

और वे उस दिन से एक हो गये। गंगला दूसरे मुहूर्त्ते में चला गया। कुछाँ बन्द हो गया। पर किसी ने गोमली से यह नहीं पूछा कि आखिर उसने अपने पति को क्यों छोड़ा? हाँ, वह सब दबी जबान से कहते हैं कि वह निहायत गिरी हुई छिनाल स्त्री है जिसने अपने भोले-भाले गरीब पति को छोड़ दिया है।

## मिस प्रभु और उनका फोड़ा

वह फिर अकेली घूमने आयी थी।

रांक के डूबते सूरज के समक्ष जब कित्तिल का रंग रक्तमय हो जाता था और नीले वर्णन रूपी आकाश में दो-चार पक्षीक घन्टों की तरह उड़ते थे तब मिस प्रभु अपनी सहेलियों के साथ घूमने आया करती थी। वह कभी भी उबास नहीं लगती थी और उसके कहकहों से सारी पर्वतीय घाटी गूँज जाती थी। वह बहुत बातूनी थी और उसके चहरे पर सदा खुशियों के भावक तैरा करते थे। हास-परिहास उसकी साधारण बातचीत में सदा रहता था।

रंग गौरा, मेहरा कुछ अधिक चौड़ा, इसलिए कम आकर्षक। स्वास्थ्य अच्छा। वस्त्र प्रस्थान्त आधुनिक ढंग के। उम्र यही तीस-पैंतीस। एकल से बचराने वाली। यही कारण था कि उसने अपने मकान में अपनी दो सहेलियों की और एक छोड़ा था। ये दोनों सहेलियाँ कुंवारी थीं और छुट्टियों में अपने घर जाती थीं। तब मिस प्रभु उस सप्ताह से एक-दो दिन तो कुछ धनराशी रहती थी; मन जमा-जमा सा रहता था और वह कोशिश करती थी कि उसकी छट्टी रात की रहे। रात को भी वह अपने घर में अकेली नहीं सोती थी। पक्षों के पास अपनी नीकदानी को सुलाती थी और उससे नींद की अंतिम रूपकी लम्हा हास-परिहास-युक्त बातें

करती थी।

रात को कभी-कभी उसकी नींद उचट जाती थी। अंधेरे में मन आकुल हो जाता था। घुटन उसके सोंस को रोकने लगती थी और अंधेरे की परतें धीरे-धीरे उसके मन पर जमने लगती थी। तब वह बबरा जाती थी और कगरे में तुरन्त उजाला कर लेती थी। अपनी नीकरानी रामी को जगाती—“रामी ! ओ रामी !”

रामी हड़बड़ा कर उठ जाती। अपनी आँखों को मलती हुई पूछती, “क्या बात है मालकिन ?”

“बात यह है कि मैं सोते-सोते हूँ क्यों रही थी ?”

“हूँ रही थी ?” वह निरभय से पूछती।

“हाँ हूँ रही थी। इस तरह हूँ रही थी कि मैं बबरा गयी। मुझे लगा कि तुम्हें कोई झूतनी राग गयी हो ? बता, सच्ची बात क्या है ?” -

“कुछ नहीं।”

“मुझ से छिपाती है ?”

“नहीं तो !”

“क्या तुने अपने पति को सपने में देखा था ?”

“नहीं तो !”

“अकर देखा,” वह अपने छाँवों पर खोर देकर कहती। “तेरी आँखों में भाँकती लज्जा बता रही है।” वस, इसी तरह निश्चेक्ष्य और बिना सिर-पैर की बातें किया करती थी।

रामी कुछ उत्तर न देती। धीरे-धीरे प्रभु की बड़ी-बड़ी आँखों में नींद घुलने लगती। बात का सिससिया यही खत्म हो जाता। प्रभु नींद में छुरछि मरने लगती और रामी उसे कोसने लगती। उसकी नींद उचट जाती। बुँधों से दूर, बहुत दूर भाग जाती। जल्दी वापस नहीं आती। वह बेहारी करवटें बदलते-बदलते परेसाम हो जाती।

‘ इस तरह मिस प्रभु का जीवन गुन-गुनाती गुर्र नहरों की तरह बस

रहा था। वह बदनाम-खुसनाम दोनों थी। उसकी सभी सहेलियाँ कहती थी, "यह न हो तो जीवन में उदासी ही उदासी छा जाय।"

इतना सब कुछ होते हुए भी मिस प्रभु की पुरुषों की सोसाइटी नहीं के बराबर थी। उसे वह जहाँ तक हो सकता किनारा ही करती थी हालाँकि वह खुद डाक्टर थी, उसका काम अनेक डाक्टरों से पड़ता था, पर वह उनसे उतना ही सम्पर्क रखती थी जितना आवश्यक होता था।

प्रायः वह रात की ड्यूटी लेती थी—अपनी ही नहीं, अपनी साथी डाक्टरनियों की भी। जब कभी वे इससे अनुरोध करती यह राहर्ष स्वीकार कर लेती। विवाहिता से कहती, "भारत की भूमि अत्यन्त उर्वरा है। सभी पावन-श्रेष्ठ नदियाँ यहीं पर बहती हैं। पंडित नेहरू के अनुरोध का ध्यान रखना!" और कुमारियों से कहती, "तुम पर नैऋत भी करना नहीं चाहती और तुम लोगों की उदासी भी नहीं सह सकती। मेरी एक बात को मानना—हर कदम देखभाल कर उठाना। लाज्जी समय में औरत का विभाग सही ढंग से बहुत कम सोचता है। वह एकांत से बचता जाती; और बचराहुट में अत्यन्त गलत निर्णय कर लेती है।"

वे बातें वह प्रायः ही बोहराया करती थी। बोहराते समय वह गम्भीर नहीं लगती थी। उसके होठों पर वही निश्चल व्यंग्यभरी मुस्कान थिरकती थी। उसकी सहेलियाँ भी उसका कुछ बुरा नहीं मानती थीं। वे सब उसको खूब समझ गयी थी।

मिस प्रभु अपने मरीजों में बहुत लोकप्रिय थी। वह उनके लिए समता की आकाश प्रतिभा थी। रात के सप्ताटे में जब हड्डियों को ठिठुराने वाली सर्दी पड़ती, बर्तनों में रखा पानी बरफ की तरह जम जाता, बसनियों के रक्त का प्रवाह रुक-रुक सा लगता, बाहर जंगल की नीरवसा छाई रहती, तब मिस प्रभु अपने ड्यूटी कम से निकलती। कुछी शिक्षिकियों को बतव करती, रोमिशियों को मित्राफ ओझापी और

उनकी छाती पर हाथों को दृढ़ता से थपाने और धीरे धीरे सपने न देखे। वह सड़पती हुई रोगिणी को सान्त्वना देती। उसे ढाढ़स और धैर्य बँधाती तब उसकी आकृति पर वही अलौकिक वास्तव्य दीप्त हो जाता। तब उसे कोई नहीं कह सकता था कि यह वही बाबूनी प्रभु है जो बक-बक और अनर्गल प्रलाप किया करती है। उस समय उसके चेहरे पर प्रीति महिला जैसी गम्भीरता होती थी।

सुबह वह अपने घर चली जाती। रामी से एक बड़े उपहास की बातें करती, बाद में दैनिक कार्य से भिन्न होकर सो जाती है। ग्यारह-बारह बजे उठती और फिर उसी उल्लासमय गतिमान जीवन में व्यस्त हो जाती है।

किन्तु उस दिन भिस प्रभु अत्यन्त व्यग्र दिखायी दी। चिंता की रेखाएँ उसके मुख पर दौड़ रही थी और वह भाकुल-भाकुल सी थी। उसने पुकारा, "रामी !"

"क्या है ?"

"ये दोनों मास्टरमियाँ कहाँ गयीं ?"

"दस बिग के लिए बाहर चली गयी हैं।"

"कहाँ ?"

"कैम्प में।"

"क्यों ?"

"मैं क्या जानूँ ?" उसने मोलेपन से कहा।

भिस प्रभु और भी बेचैन हो उठी। वह दृढ़कर पलंग पर पड़ गयी और बड़ी देर तक अपने विचारों में तन्मय रही। बाद में धीरे-धीरे उसने अपनी साड़ी को कँचा किया। उसकी बगरी पिछनियाँ खमक लठी और साड़ी बाँध के अर्ध-नाग तक धाकर रुक गयी !

उसने आसन्न हृष्टि से देखा—फोड़ा ! रोम-टूटा, फोड़ा ! वह अशोष आत्मक की तरह उसे देखती रही। अनार के प्रारम्भिक धाने की तरह उसका फोड़ा उसकी भीरी बाँध पर खमक रहा था। उसने उस पर

हाथ फेरा। उसे मीठी-मीठी गुदगुदी हुई। उसे दर्द गीठा-मीठा लगा। वह घड़ी केर तक उठा पर हाथ फेरती रही। सुखद अनुभूति ने उसे विह्वल कर दिया। चिड़िया की तरह चहकने वाली प्रभु की आँखें भर आयीं।

रामी ने बिना पूर्व सूचना के कमरे में प्रवेश किया। वह अपनी मालकिन को रोते हुए दे कर भौचक्की-सी रह गयी। आकुल स्वर में बोली, "क्या बात है मालकिन?"

मिस प्रभु ने अपनी सम्भूरी दृष्टि से उगे देखा। वह कुछ बोली नहीं। बिपाद की छागा ने उसके मुँह को बहुत ही कससा बना दिया था जिससे रामी का मन भी उदास हो गया।

हालाँकि भर तक निस्तब्धता छावी रही।

"क्या बात है!" रामी ने फिर सोचा।

"कोई..."

"कहो?"

मिस प्रभु ने जाँच की ओर संकेत कर दिया। वह अपने आँखों से मधु पीछने लगी।

रामी बिस्मिल्ला कर खूँस पड़ी। उसकी हँसी से चारों कमरा गूँज उठा। मिस प्रभु विमूक हो गयी। वह इतने ओर से क्यों हँसी वह नहीं समझ सकी। जब प्रभु के समक्ष किसी कारण का उद्घाटन नहीं हुआ, तब वह अयोध बालक की तरह महान् स्वर में बोली, "तु हँसी क्यों?"

"मैं इसलिए हँसी कि शाम बाकटरजी होकर भी एक चरा-सा फोका होने से रोती है?"

मिस प्रभु गम्भीर हो गयी। उसकी दृष्टि ने प्रधान बरसका जिसे उसने अपनी मुस्कान में चिपसी करना चाहा पर रानी गहरे गयी। जिस सेजी से मिस प्रभु के चेहरे पर विचारों के परिवर्तन हुए उन्होंने रामी को आतंकित कर दिया। वह निश्चल सी खड़ी, मिस प्रभु के चेहरे का अवलोकन करती रही।

"रामी!" मिस प्रभु ने उसे सम्बोधित करने के लिये कहा— "मैं इसे

फोड़े से चरारा जाती हैं। एक बार पहले भी मेरी दूसरी जाँघ में ऐसा ही फोड़ा हुआ था, जिससे मैं घबरा गई थी। पूरे एक माह के बाद मर गया। देखो यह रहा उसका दाग।" कहकर उसने अपनी दूसरी जाँघ भी नंगी कर दी। उसमें एक गहरा तिकोना दाग था।

"बड़ा अजीब दाग है!" रामी ने पुत्तलियों को नचाकर कहा।

"तभी तो मैं घबरा गयी थी!"

"फिर भाग जल्दी से इलाज क्यों नहीं करती?"

"करूँगी।"

किन्तु मिस प्रभु ने चार रोज तक कुछ भी बचा नहीं की। उसने अस्पताल से छुट्टी ले ली पर इस फोड़े के रहस्य को गुप्त ही रखा और रामी को भी मना कर दिया कि वह इस फोड़े का चिकित्सा किसी से भी न करे। इन चार दिनों में उसने उस फोड़े का जो दुर्घट दुःख वहन किया, उसे वा तो रामी जानती थी या स्वयं वह।

चौथी रात फोड़ा अपने पूरे जोर पर था। पीव भर गयी थी और शारी जाँघ तब की तरह लाल हो गयी थी। मिस प्रभु उसे सहलाती रहती थी और जब पीड़ा अधिक होती तो वह नखों की शोलियाँ ले लेती थी। रामी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। "दर्द को पालना भी कोई शौक होता है! फिर बालकिन तो दर्द के नाम से डरती भी हैं।" किन्तु उसमें इतना भी साहस नहीं था कि यह जरा दबाव देकर पूछे कि आखिर इस तरह सड़पने में क्या मजा मिलता है?

पाँचवी रात हो गयी।

मिस प्रभु के पास जैम्स की हरी रीबन की सीमित बुल में फैली थी। उसका हल्का प्रकाश मिस प्रभु के मुख पर पड़ रहा था और वह अपनी कोमल हथेली से फोड़े को सहला रही थी। रामी रुक होकर सो गयी थी। आज उसने अपनी आत्मकियसे अत्यन्त आग्रह किया था कि वह क्यों नहीं बताती कि आखिर इस जाँघ के फोड़े को पालने में उसका कौन-सा स्वार्थ है। मिस प्रभु ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया था। वह बीरे-

धीरे सीतकारती रही थी। उसके अक्षरों पर दर्ब धमक-सा रहा था और दृष्टि में अर्थभरी कई चिनगारियाँ उठ-उठकर बुझी आ रही थी।

गहरी चुप्पी से उकता कर रागी ने अन्त में कहा था, “भालकिन आप नहीं बसाती हे तो मे कहुँगी कि आपका माया नहीं हे।” और वह सो गयी थी। सोते ही उसे गहरी नींद आ गयी, जैसे वह छोड़े बेचकर सोयी हो।

मिम प्रभु के सम्मुख कल्पना का चित्र हलके दृष्य की तरह नाच उठा—

“कल यह फोड़ा फूट कर ही रहेगा। खून और पीन की धारयाँ भेदी सारी जाँघ को लहलुहान कर देंगी इसके सौत्वर्थ और बेले की झाल-सी सुकोमलता को विकृत कर देंगी। उसे कुरवरा बना देंगी। कई विलों के लिए लेकिन.....।”

“लेकिन-बेकिन मैं नहीं जानता, मैं कल तुम्हारा आपरेशन कर्हंगा ही।” प्रभु के जेमी मदन ने कहा था।

“आखिर क्यों ?”

‘क्यों-क्या ? कहीं विषेला हो गया तो ?’

“मुझे विषेला नहीं हो सकता।”

“इसलिए नहीं हो सकता कि तुम डाक्टर हो। क्या डाक्टर को बीमारियाँ नहीं होती ?”

“तुम समझते क्यों नहीं मदन, फोड़ा है, अपने आप ठीक हो जायेगा।”

“बालिम, रोय उपचार से ही ठीक होता है। मैं कल इसका आपरे-शन कर्हंगा भी, चाहे तुम लाख मिल्माना। ज्यादा करोगी तो बेहोश कर दूंगा। आखिर मैं तुम से सीमित हूँ।”

“अच्छा बाबा, अच्छा,” मिस प्रभु ने उसे बेवता की तरह सम्झे हाथ जोड़े। मदन ने उन बड़े हुए हाथों को अपनी कोमल हथेलियों के बीच में लिया। प्यार से उन्हें पकड़े रहा। मिस प्रभु अपने फोड़े का



सीखा दबं क्षण भर के लिए झूल गयी ।

“क्या सोच रहे हो ?” प्रभु ने पूछा ।

“सोच रहा हूँ, इन हाथों को जीवन पर्यन्त न छोड़ूँ ?”

सजा गयी थी प्रभु । नेत्र मुक्त गये और गानों पर लालिमा झलक उठी । वह कुछ बोली नहीं, देखती रही तृष्णा भरी दृष्टि से । पता नहीं कब मदन ने उसके होठों को रसीला कर दिया था । वह विमृगधत्ता में जान भी न सपी ।

मदन और प्रभु के बीच आकर्षण अस्पताल में आते ही उत्पन्न हो गया था । बीरे-बीरे सम्पर्क बना और प्यार ने भँगड़ाई ली । मदन जलसर प्रदेश का निवासी था, और प्रभु राजस्थान की । प्रभु के माँ-बाप नहीं थे । नाना ने उसे डाक्टर बना दिया था । शादी करने के बारे में वह स्वतन्त्र थी । उस पर किसी तरह का जातीय प्रतिबन्ध नहीं था । मदन मन्दर था — डाक्टर था । दोनों की जोड़ी चुब फरेगी । किन्तु दोनों ने एक दूसरे के समक्ष दिल खोलकर नहीं रखा । ऐसी परिस्थिति थी नहीं आई ।

गौर, एक दिन वह अवसर आ ही गया ।

मिस प्रभु की जॉब में फोड़ा हुआ । मासूम पड़ते ही मदन आया और खपवार करने लगा । मिस प्रभु ने साफ कह दिया कि वह न तो आपरेसन करायेगी और न ही दवा लेगी ।

“क्यों ?” मदन ने पूछा ।

“इसलिए कि मैं इसे ठीक नहीं समझती ।”

मदन उसके हृत् के समय कुछ बोला नहीं । उसे जब-जब समय मिलता तब-तब आगे उसके पास आता था और उसके फोड़े को देखता था । प्रभु को यह अच्छा लगता था । मदन की अंगुलियों का स्पर्श उसके मन में सरगम का संगीत भर देता था । पीड़ा भीठी-भीठी और भी प्यारी हो जाती थी । बीरे-बीरे फोड़ा बिगड़ गया । अब मिस प्रभु की एक भी न बली । मदन ने उसका जबरदस्ती आपरेसन कर दिया । प्रभु की करा

भी कष्ट न हुआ। वह इन्वेक्शन भी लेने लगी।

पट्टी बाँधते हुए मदन ने पूछा, “इतने दिन तक तुमने आपरेशन क्यों न करने दिया? व्यर्थ ही कष्ट भोगा। प्रबन्ध यह थाव भरेगा भी बहुत देर से।”

“मुझे तबपने मे भ्रान्त्य आता है,” उसने भावुकता से कहा।

“अच्छा।”

मिस प्रभु ने गर्दन हिला बी जैसे कह रही हो कि ‘हाँ’। वस्तुतः मिस प्रभु ने इस फोड़े का बहुत ही चुकिया मदा किया, क्योंकि इससे उसके और मदन ने बीच की भिन्न-भेद मिट गयी। वे अत्यन्त समीप आ गये। उसके गरमानों के फूल खिल उठे। उल्लास के स्रोत फूट निकले।

प्रभु ने एक दिन उसे अपनी बाँहों का सहारा देते हुए कहा था,  
“कब वाली करोगे?”

“जल्दी ही।” मदन ने कहा।

“पिताजी को मिला?”

“लिख दिया।”

“क्या उत्तर आया?”

“उन्होंने मुझे बुलाया है।”

“कब जा रहे हो?”

“अगले सप्ताह।”

पर अगले सप्ताह ही मदन की दूसरे शहर में बदली हो गयी। मिस प्रभु को यह अच्छा नहीं लगा। उसने मदन से समुरोध किया कि वह अपनी बदली का आर्डर कैंसिल करा दे। चाहे उसके लिए कुछ रुपये खर्च हो जायें तो भी कोई परवाह नहीं। मदन ने उसे आश्वासन दिया कि वह प्रयास करेगा।

पर मदन की बदली होकर ही रहनी।

मिस प्रभु ने उसे आसु गरी बिदाई की और कहा कि “तुम्हें जल्द-

से-बल्द विवाह करने का प्रयास करना चाहिए । मैं मर ए कान्त से धबरा चुकी हूँ । मेरा मन अधिक अलगवाव अब नहीं सह सकता ।”

मदन ने छाट्टी ज्वाइन की । वहाँ से वह छुट्टी लेकर घर गया । एक साह तक नहीं लौटा । क्या करे मिस प्रभु ? उसके पास उसके घर का पता भी नहीं था ! हर पत्र में लिखता था कि मैं दो-चार दिन में आ रहा हूँ । इसरो प्रभु ने पता खोजने की अधिक चेष्टा भी नहीं की थी ।

प्रभु की दशा विरहिणी जैसी थी । आखिर मदन लौट आया । उससे मिला । दो-तीन दिन आमोद-प्रमोद में बिताकर वह वापस नौकरी पर चला गया ।

“शीघ्र ही हम अलूट बल्बन में बँधेंगे ।” मदन ने जाते समय उससे कहा था ।

दो पत्रों के बाद मदन का कोई गन् नहीं आया । इसने कई पत्र डाले । आखिर वह धबरा उठी । कहीं मेरा मदन बीमार तो नहीं हो गया ? वह कुष्कल्पनाओं से अभीर होती गयी । उसे हर घड़ी अहित का आभास होता था । अनागत अमंगल की आशंकाओं ने वह डूबी सी रहती ।

एक दिन वह कुपचाप खाना हो गयी अपने मदन के पास ।

दूसरे दिन मदन के अस्पताल में पहुँची । मदन नहीं था उस दिन । रात द्यूटी करके गया था अभी-अभी । उसने घर का पता लिया । चल पड़ी तंगी में । उसके दिल में उत्तेजित सपने तैर रहे थे । वह उनकी आदकता में विभोर हो गयी । आँखों के आगे आसुओं के बादल छा गये ।

“कहाँ चले कीमी जी ?” तंगिवाले ने उनका ध्यान भंग किया ।

“बड़े जोराह की दूसरी गली में ।”

तंगी दूसरी गली में घुस पड़ा ।

उसने एक आदमी से पूछा, “भाई, नम्बर ५२५ कहाँ पर है ?”

आदमी ने अपनी गोल-गोल आँखें मिचमिचाईं जैसे वह सोच रहा हो, फिर कर्कश स्वर में बोला—“उस बड़े वृक्ष के आगे ।” तंगी

बल दिया ।

‘मैं जानती हूँ, वह अभी सोया हुआ होगा । उमका वसिष्ठ शरीर रेजमी पिस्तरे पर इस तरह लेटा हुआ होगा जैसे कोई अँगड़ाई सजीव होकर निद्रा में निमग्न हो । मुझे देखकर वह चौक उठेगा और अपनी पिचाल दाहों में भर लेगा । मैं उसे नहीं रोक्की । आखिर वह मेरा होने वाला पति ही तो है !” वह सोचती जा रही थी ।

तारा बरु गया ।

“ठहरावा भैया,” कहकर वह उन् हार की ओर गयी । उसने कुड़ी खटखटाई । द्वार खुला । एक सुन्दर-सुबध-सखीनी युवती उसके समक्ष खड़ी थी । उस युवती ने प्रणाम करके पूछा—“बाप किसको चाहती है ?”

“डामटर सबल को ।”

“आइये, मे चाय पी रहे हैं,” कह कर युवती ने बड़े आदर-भाव से उसे खलने का संकेत किया ।

प्रभु के भस्तिष्क में उस युवती ने अनेक प्रश्न उत्पन्न कर दिये । पर क्षणभंगुर ऐसे थे कि वह कुछ पछ न सकी ।

“डामटर साहब !” युवती ने पुकारा ।

मदन ने गर्वन उठायी । विस्मय-सा हो गया । इन्हाय मूढ़ से निकला “तुम ?”

“हाँ मैं,” उसने कठोर स्वर में कहा जैसे वह मीथूना पुफान के रंग को पहचान गई हो ।

“प्रमिला, यह मेरे साथ काम करती थीं, नाम है मिस प्रभु” और ये हैं मेरी पत्नी प्रमिला ।”

“ममस्ते,” प्रमिला ने कहा ।

“कौते भाना हुआ तुम्हारा ?”

“काम से ।”

“तुम्हारा सामान इति मैं है, भाग कर लाते क्यों नहीं ?” प्रमिला

ने कहा ।

“नहीं बहन जी, मैं अपनी सहेली के नहीं ठहरेगी । वह यही पास में रहती है । मुझे जाने की इजाजत दीजिये ।”

“पर चाब ?”

“बेक्यू ।” यह हवा की तरह घर से बाहर चली आयी । वह उसी समय वापस चली आयी । उसका हृदय चीत्कार कर उठा । उसे लगा कि वह जंगल में जाकर जोर-जोर से चीखे, अपना सिर फोड़े, बालों को चीखे । कहीं वह पागल तो नहीं हो जाएगी ?

मिस प्रभु कई दिन तक यूँही बनी रही । बाद में सहज हो गई । उसने प्रण कर् लिया कि वह कभी भी विवाह नहीं करेगी । सब से वह धीने-धीरे बातूनी बन गयी । उस मुकान्त और नीरवसा को अपने पास फटकने नहीं दिया, जो उसे बुद्धिनों का स्मरण करा बेती थी ।

किन्तु यह धूमरी जीव का फोटा । मरण समाप्त हो गया ।

रात बहुत डल गई थी । अतीत अतचित्त की तरह कुछ बेर के लिए साकार होकर बाह्य प्रेक्षे में लीप हो गया था । हरी बत्ती का प्रकाश सागर की सतह जैसा अग भी फैला हुआ था । मिस प्रभु अपनी आँखों के फोड़े को भूला रही थी । बर्द आज फिर मीठा हो उठा था । आज वह फिर इस फोड़े को क्यों पतपने दे रही है ? वह इस बर्से से वाशास है । जीवनी का प्रयास करती है पर मृग-मरीचिका की तरह उसे धूम्य ही मिलता है । वह क्यों वह पीड़ा भोग रही है ? मदन की स्मृति फिर उसे कुरेवने लगी । वह भावना में बह गई । उसे लगा कि वह फोड़े को इसलिए जीवित रख रही है कि उसके अचेतन मन में एक बुरासा है कि अभी मदन आयेगा और कहेगा, “मैं इसका भापरेखन करूँगा ।”

प्रभु बबरा गयी । प्रीति के वे मधुर लण उसकी धाँसों के समक्ष गायने लगे । उसने हारे हुए सेनानी की तरह अपने मन-कपाट बन्द कर लिए । उसने कमरे में अन्वेषण कर दिया ।

पीड़ा बन्द रहो जी । स्मृतियाँ पीछा नहीं छोड़ रही थीं ।

अधेरे में लगा कि मदन उसके पास खड़ा है। कह रहा है—“क्यों पीड़ा भोग रही हो ? मैं आज आपरेशन करूँगा। इसका सवाब निकालूँगा।”

“हूँ !” उसका अन्तर्भन भड़क उठा।

“मैं ठीक कहता हूँ।”

“तुम मुझे स्पर्श कर लोगे तो मैं अपनी जान दे दूँगी। छली, नीच ! आखिर तुमने वह बोंग क्यों रखा ? मेरे जीवन में कभी न सत्य होने वाली वीरानियाँ और तनहाइयाँ क्यों भर थी ? मैं कहती हूँ, मरने दो मुझे ! मेरे कोड़े को हाथ भस्म लगाओ मदन, मदन ! मैं तुम्हारा स्पर्श भी अब सहन नहीं कर सकती। जाओ...!” और उसने अपनी जाँघ की पेट में समेटने की चैष्टा की। बर्ब सीधतम, होकर, सड़पावे लगा। फिर यकायक कम होने लगा। भावनाये टूटकर बिसर गईं। वस्तु-जगत प्रकट हो गया। उसने लपककर बेड-स्पीच दबाया। कमरे में फिर हुरा प्रकाश फैल गया। उसने देखा—फोड़ा फूट गया है, सवाब वह रहा है उसके सरीर से। वह क्षण भर देखती रही। फिर बोर से नीली—“रामी !...रामी, जल्दी से उठ। रामी, यो रामी !”

रामी हड़बड़ा कर उठी। उवाला धरि भी तेज किया।

“क्या है मामकिन ?”

“मेरा फोड़ा फूट गया, मेरा फोड़ा फूट गया।” उसके बेहूरे पर ऐसी अपूर्व खुशी थी जैसे उसे नया जीवन मिल गया हो—जैसे इस कोड़े के सवाब के साथ उसके मन की वे कूँठाये भी निकल रही हों जिन्होंने उसे आवश्यकता से अधिक अन्तर्मुख बना दिया था।

“फूट गया ?” रामी ने चौंककर पूछा—उसके बेहूरे पर भी अपूर्व खुशी थी।

“हाँ, देख व !”

रामी दौड़कर गई, छिटोस और गर्म पानी में धोयी। वह घाव को हल्के-हल्के हाथ से साफ करते हुए पूछ रही थी, “आपने इतने दिनों तक

दर्द को क्यों सहा ?”

मिस प्रभु मुस्कराती हुई बोली -- “तू नहीं जानती; मैं प्रकेली नहीं रह सकती। इसीलिए इस दर्द को साथी बना लिया। तू तो जानती ही है, तेरी ये दोनों ग्रास्टरनियाँ बस दिन के बाद आयेंगी !”

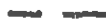
“एक बात कहूँ, आप बुरा तो नहीं मानेंगी ?”

“नहीं।” उसने गुलक कर कहा।

“जीवन में सदा साथ देते वाला तो श्रीरस का अपना दर्द ही होता है। आप विवाह क्यों नहीं कर लेतीं ? मेरी बात मानिये और पट मँगनी पट बगाह कर लीजिये।”

मिस प्रभु की माँसे मानो बोल पड़ी, “मैं भब बकर फरूँगी,” पर वह प्रकट में बोली—“धुल पगली, सदाब बह-बह कर नीचे गिर रहा है और तुझे विवाह की बातें सूझ रही हैं ? अल्दी कर !”

रामी धीरे-धीरे फोड़े के आस-पास की जगह दबाने लगी। मिस प्रभु के भाव-लोक में नया ही चित्र बन गया। मानो जाँच को दवाने वाली वे अँगुलियाँ उसके अपने पति की हैं और वह एक बार फिर अपने दर्द को झूझ गयी।



## मैलु हाउस

७

खोपहर में जिस तरह समुद्र का किनारा खाली रहता है, उसी तरह सड़कें खाली थीं। दक्कन-नगरी सड़क की तरह वैसे और हमारे परिवहन घा जा रहे थे। 'हस्तगी भरी और भ्रष्टा नगरी का यह खालीपन मुझे अचिरक नही लगा। पर यह खालीपन ही इस नगरी की ओर यहां के लोगों की वास्तविकता है। ऊपर से भरा-भरा और भीतर से खाली, जमीन के एक बहुत बड़े निरर्थक होख की तरह खाली।

मेरे बेसकीमती पोशाक पहने हुए घूम रहा हूँ। कहीं भी मन का ठहराव नहीं। रेस्त्रां, सिनेमा घरों और अनेक दूकानों के दो-दरों में जाता हूँ, थोड़ी देर बैठता हूँ। मन अन्धरी भीलों, सुस्वर औरतों और तरल-पेयी के आगके में क्षण भर के लिए खोता है। फिर उकठ-उकठ जाता है और मैं अटकने लगता हूँ। चककर जामुन के पेड़ के नीचे खड़ा होता हूँ। अधपके, पके और पाँवों से कुचले जामुन पड़े हैं। पता नहीं, क्यों मैं उनको गिनने लगता हूँ—एक-दो-तीन-चार-पाँच-छह—'गोरे पाँव दिखायी पड़ते हैं। स्याम इस तरह उस ओर खींचता है जैसे वे गोरे पाँव नहीं, कुम्भुक हैं। इधर ऊपर उठती है। विनोबा भावे का पोस्टर शान्तीसैन सहसा याद हो जाता है। अंग्रेजी कम्पनियों की 'कम्पिगल भाट' की बत्तायी, सुन्दरियों का स्मरण ही आता है। अकस्मात की भीति-



नारी भी...कि राहसा मेरा एक मित्र बरकत ध्यान भंग करता है—

“अरे तुम, आई कब आये ?”

“कल...।”

“सूचना भी नहीं दो ।”

“सूचना देकर मैं तुम्हें परेशान करना नहीं चाहता था । तुम तो जानते ही हो, कि मैं कार्यक्रम के अनुसार घर से रहना कभी नहीं हो सकता ।”

“आओ ।”

“घर कहाँ ।”

“बरा आ आओ, कहा-पहा मत पूछो ।”

मेरा मित्र मुझे सीधे घटो तक विभिन्न दफतरो में अपने निजी काम से भ्रमाता रहा । बहने-उतरते और वेटिंग रूमों में जबकी प्रतीक्षा करते-करते मैं बिलकुल खोर हो गया । इतना खोर की मस्त में मैंने उसे भरसा कर कहा, “तुम लोग मीठ हो और अच्छे हैं तुम लोगों की मेहनत-मवाजी ।”

“अरे तुम बार-बार मान गये । इस दिल्ली की लाइफ ही ऐसी है । एकदम सैकेलिकल, एकदम त्रिपी । फिर काम न किया जाय तो जीना मुश्किल हो जाता है ।...आओ, तुम्हें ठंडा पानी पिलाऊँ ।” मैंने अनिच्छा से पानी पिना ।

पानी का भिलास असर करते ही उसने अपने आपको कुछ आश्चर्य से सम्भरा और कहा, “सोच तो गयी है बार ! चलो, तुम्हें यहाँ का मँड हाउस दिखावा लाऊँ ।”

“दिल्ली का मँड हाउस ?” मेरी आँखों में प्रश्न नाच उठा ।

“हाँ, हिन्दुस्तान में अपने ढंग का असर प्रयोग ।” जिस तरह कैदियों के जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए सरकार ने सुधारवादी, हठिकोण अपनाया है और सुधार जेलों का निर्माण किया है, उसी तरह संस्कृत और बुद्धिजीवियों के लिए यहाँ के एक पूंजीपति ने एक मँड

हाउस बना दिया है, जहाँ वे अपनी अस्तंगत्मा के साथ आर विभूतियों को खुले आम प्रकट कर सकते हैं। माओ—“इस नये ढंग के पागलखाने की नये तरहूँ के पागलों के बीच चलें गिन्ते बड़े बड़े धरे के लिए होते पड़ते हैं।

हम दोनो बसे। अब उसके ऊपर आगे समुद्र की भाँति विभिन्न आकृतियों से भर गयी थी। नगरने जाँचस उठ रहे थे और बसे नगर-मच्छ की तरह भीट को चीरती हुई आग रही थी।

जब हम दोनो सैड हाउस के पास पहुँचे तब बाहर कुछ राग इस तरह लड़े थे जैसे उन्हें किसी ने छूट लिया है। उनकी उदाम-उदास बुद्धि-बुद्धि आकृतियाँ गुर्दा सी लग रही थी। “हम भी उनके पास लड़े हो गये। मैंने आते दोस्त ने कहा, “भीतर क्यों नहीं चलो?”

उसने सैड हाउस के दरवाजे ही खोल देखा। देखकर उसने लम्बी मास सीनी और बोला, “थोड़ी देर यहाँ पर ठहरो, बाद में चलेंगे।”

मैंने सोचा कि उसने दरवाजे की ओर देखकर यह क्यों कहा? शायद इस नज्द हाउस का दरवाजा किसी अदृश्य किशोरी से बन्द होगा। मेरे चुपचाप वहाँ जा रहा। फिर वही ऊँच गौर छावीयन। अचानक मेरे दोस्त ने कहा, ‘चलो।’ और वह मेरी बिना प्रतीक्षा किये ही सैड हाउस में घुस गया और पीछे जाया की तरह मैं भी।

‘हूँ ही ही ही S S S S

कहा हा हा हा S S S S”

धीमे सिधित और लुला अट्टहास।

दो तरफ़ के अट्टहासों के मिश्रण से अट्टहास का एक नया अन्वय पैदा हो गया। मैं एकदम सहन गया। पक्षर सड़ सैड हल्ला है। मैंने अपनी अवशेषियों के सहारे अपनी दृष्टि को दीखाया— वो जने सामक से मजबूत तरह से मेरे पर हाथ मिलाते हुए, यह अट्टहास-फंक्शन छोड़ रहे थे। एक मास निचरे हुए, जेसा लबाये और बिना कौन का नुस्खे पढ़ने हुए या और दूसरा दूँधीदार पागलाना और गैरबानी बदले

हुए था। मेरे गिर ने बताया, “दोनों एम. ए. है। सायरी करते हैं।  
आयो तुम्हें मिलाकें?”

मैंने एक बार पूरे मंड हाउस की ओर देखा। आलीशान फर्नीचर  
अल्ट्रा मोजन बनावट। फैशनेबुल पाट्री। मैं सहमा-सहमा सा आने  
बाद। मेरा दोस्त मुझे उनसे पाम ले गया। हम दोनों मेज के पास खड़े  
हो गये। हमें देखते ही खेरवानी वाले गद्दाशय ने कहा, “भरै मियाँ  
बरकत, आज तुमने मजबूत जैसी शक्ल क्यों बना रखी है। बार मुहब्बत  
के मारे हम हैं और परेशान तुम हो रहे हो?”

मेरा दोस्त बरकत गुंभा हो गया। उसने मेरी ओर सामिप्राय दृष्टि  
से देखा जैसे वह मुझे कह रहा है—क्यों? है न इनमें पागलपन?

तभी खेरवानी फिर बोला, “बैठ न बार।” जैसे उसे कोई झूठी बात  
याद हो आयी हो, इस तरह वह बोला, “आपकी तारीफ?”

“मेरे दोस्त हैं, नरेख?”

“यहाँ कभी देखा नहीं। क्यों अनाज, हम जगह से डरते तो नहीं  
हो? यह हम इन्टैक्चुअल लोगों का भेड हाउस है। बैठिए न?”

हम दोनों बैठ गये। बैठते ही बिसरं बालो यासा युवक गोपीचव  
‘जमन’ चौककर बोला, “बार क्या खेर बना है...”

या रब इस पल की लग्न हो क्यामत तक

वो आये हैं आज एक पल के लिए

असलम खीज कर बोला, “बोली बार न खेर सायरी को। हूँ  
मियाँ बरकत, उस लौंडिया का क्या हाल-चाल है?” उसने भाँख मारी।  
बरकत का हाथ जोर से दावा। जमन बार भीबार को जलाकर अपनी  
सायरी की दुनिया में खो गया। मैं प्रश्न भरी दृष्टि से दोनों को देखता  
रहा। वे दोनों अत्यन्त अचानक बातें करते रहे।

एकाएक किसी ने बरकत को पुकारा। हम दोनों उठे। दूसरी मेज  
पर गये। वहाँ एक गेरा भी परिचित था, ऐसा परिचित जिसे मैं अपनी  
पलकों पर बिठाये रखता था और जब कभी भी वह मेरे मगर पाहुना

बनकर आया तब मैंने उसकी भागवानी में आँखें बिल्ला दी थी और मैं भगवान् श्रीकृष्ण की तरह नये पाँव उनके स्वागत हेतु आगता था । लेकिन उसने मुझे ज्योही देखा त्योंही एक अजीब अजनबी सा भाव बताया । सचमुच उस तेज दृष्टि को देखते ही मैं सहम गया और मेरी अपनी सजर ने पल भर में सारे मँड हाउस की दीवारों को अपने में भर लिया ।

यह भारतीय एक अजनबी सा बोला, “आप कब आये ? बैठिए ?” आर्यस्त कार्मेलिटी । मैं बैठ गया । आस-पास बेला “कई बुद्धिजीवी । लेखक, नाटककार, पत्रकार, कलाकार, चित्रकार बैठे थे ।

“अरे मैंने सुना बम्बई गये थे ?” मेरे भारतीय ने मौन भंग किया । “कुछ काम-बाम बना” “यार ! अब तुम्हें सिखने के बजाया कुदती भी लड़नी चाहिए, बिना अच्छे स्वास्थ्य के स्वस्थ साहित्य नहीं लिखा जाता ।”

मैं हैरान । कैसी अनास्थिति है मेरे इस भारतीय की । फिर उसने उस प्रसंग को छोड़कर मेरा अन्य दोस्तों में परिचय कराया । एक कामे-चियन शवल का लेखक बोल पड़ा, “मैं आपको पहले से ही जानता हूँ । आप से मिल भी चुका हूँ ।”

“मुझे याद नहीं पड़ता ।”

“कलकत्ता में, अरे उस ‘बार’ में, आपके साथ एक बंगाली लड़की थी, आप उस दिनों बंगाली जीवन पर एक उपन्यास लिख रहे थे ।”

“मुझे याद नहीं ।” मैंने निश्छलता से कहा ।

मेरे भारतीय को बीरा पड़ गया, “नरेस ! बंगाली लड़की हाय-हाय ।” उसने मेज पर और से बाप करी । मैंने उसे निहायत बेहूदगी समझा, पर धुई की उपस्थिति पर इतनी जोर की बाप का कोई प्रभाव नहीं हुआ । सत्री से अपने-अपने में तन्मय और व्यस्त ।

बात का तारतम्य यहाँ जरूरी नहीं । पागलों की बात में सिद्ध-सिद्धा ? नहीं जी ! सत्री पत्रकार मूर्खोदय गर्भीरता से बोले, “मैंने

अपने पर्व में एक स्टोरी छापी है—सूखे पेड़ पर हरी पतियाँ ।””शार्फ, लेखक अवधेश ने आज की ह्यासोन्मुखी जीवन की बहुत ही सही तस्वीर खींची है।”

लेखक ‘मनगड़न्त’ सहसा उछल कर बोले, “क्यों न सही खाका होगा, बाबिर अवधेश खुद भी ह्यासोन्मुखी परम्परा का है। वो भारिल्टी को स्टैन्डर्ड...एकदम कुत्ता, हड्डियाँ चूसनेवाला।”

“सुना है, सन् ६० में उसने एक छोकरी को लेखिका बनाने के चक्कर में बरबाद कर दिया था।”

“अरबाद ? जानते हो वह लड़की इतनी कुंठाग्रस्त हो गयी है कि उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया। अरचनात्मक दृष्टि। लगता है कभी न कभी वह अपनी आत्मरस्ती के चक्कर में आत्महत्या करेगी।”

“क्या आत्महत्या की रट लगा रही है।” मेरा आत्मीय ओर से चींका और मेरी ओर उन्मुख होकर बोला, “बसाधो यार, बम्बई में कोई एक्स्ट्रा की...।”

मैं गुस्से में जर गया। मल्लाह से बोला, “छोकरी-छोकरी छोकरी ?...जाग्रो सड़क पर छोकरीयों की कतार मिल जायगी।” फिर मैं कुछ थककर बोला, “सुख-दुख की बातें करो। यह पूछो कि तुम कैसे की जासनिग करके थी रहे हो ?”

वेवकूत आलोचक ने बीच में अवरोध उत्पन्न किया, “ए मेरा, ठंडा पानी पिनाओ।”

“लाया लाह्व !”

मैंने पूछा, “केवल ठंडा पानी ही पिओगे या कुछ और...”।

। सबके चेहरे क्षण भर में एक अनजानपन की तटस्थता से धिर गये। दृष्टियाँ इधर-उधर बीड़ने लगीं। लेकिन पत्रकार ने चार मिनार अकेले मुलाकात कहा, “यह हमारा अपना हासल है। इसके आसिक ने अपने सभी नीकरो को कह रखा है कि उन्हें कुछ मत कहना, ये सभी हमारे हासल के

गौरव बिन्दु हैं।”...उसने जोर का कस लिया।

ठंडा पानी आ गया। पीकर कुछ ठंडे हुए।

मेरा भारतीय मुरझाया सा बैठ रहा। सभी तालियों की गड़गड़-हट। दूसरी भेज के पायल खुशी से उछल रहे थे। अनाम मुहम्मद अली कह रहे थे, “हिन्दी एक बकवास जेंगवेज है। नेरुगल जेंगवेज बन सकती है और न बनेगी।”

एक अंग्रेजी दाँ अपने तेलहीन बालों में उंगलियाँ डालकर बोला, “हम मरते वम तक भी अंग्रेजी को सपोर्ट करना नहीं छोड़ेंगे।

सभी आ गये एक व्यंजन लेकर। वे अंग्रेजी दाँ के पास गये। तपाक से बोले, “आप मायब सूत बनने के बाद भी हिन्दी का विरोध नहीं छोड़ेंगे। आपकी आत्मा अलबारी के दपतरी, पालिसामेंट और गिनिस्टरी के विलोदिसान में घूमती रहेगी। आपको इसका भी धार्मिक दूरा है कि आप ब्रिटेन में क्यों नहीं पैदा हुए? और आपका बाप एक अंग्रेज क्यों नहीं हुआ?”

सझाटा।

“आप-आप।” उन्होंने गुस्ते में अपने हाँठ चबा लिये।

“मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि हिन्दी राष्ट्र भाषा बन गयी है। अंग्रेजी के मोह ने मेहरू की प्रतिष्ठा को तिला द्रिथा। अरानी, जोहिया और कृपलानी की जीत नेहरू सरकार के प्रति प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया नहीं?”

“लेकिन अंग्रेजी...”

“पर आप अंग्रेज लोगों की मारिस्टी भी देखिए। वे आपको मरह अपने देश, अपनी भाषा और अपने आप के प्रति ज़िम्दार नहीं करते। समझे।”

जोर की हँसी। बाह-बाह गाँधी जी। क्या मिसाल एक की है आपने?...और गाँधी जी सच गामिनी जी तपड़ चक्करे हमारे कम में शामिल हो गये और आते ही बोले, “तुमने...ने सभी कहानी पढ़ी। क्या

प्रयोग...बाप की...साले प्रयोग के नाम पर फचरा भर रहे हैं साहित्य में। फिर उसने मेरी ओर देखा और हाथ बढ़ाते हुए कहा, "तुम कब आये जिनग। न सूचना और न खबर।" हम दोनों ने हाथ मिलाये। गांधीजी ने भद्र से कहा, "इसे पुछो, उस साले चेतन के प्रति, क्या नहीं किया-उसने? पर वह साला इसे ही दगा दे गया। मैं कहता हूँ कि ऐश ए सैन, वह बहुत ही रही है।"

"आई साहित्यकार के व्यक्तिगत जीवन से हमें क्या पड़ी?"

गांधीजी चिढ़ पड़ा, "क्यों नहीं पड़ी। एक मिला मालिक किसी खोकरी के साथ बलात्कार कर जाता है तो वह गुनाहगार कहलाता है। यदि वह मजदूरों के प्रति विश्वासघात और धोखा करता है तो हम मान्योक्तन खड़ा करके उसकी नैतिकता को चुनौती देते हैं और हम साहित्यकार कहलाने वाले प्राणी चाहें किसने ही अनैतिक अनुचित काम करने, क्षम्य हैं। यह कोई न्याय नहीं।"

"आई मैं तुमसे सहमत नहीं।" मेरा भारतीय बोला।

"तुम क्यों सहमत होओगे। तुम भी तो बैसे ही हो। बेचारी मिला झन्डा को?...सूखे गोल्ल के पीछे अपनी जीवी के वंग अमानवीय व्यवहार करने वाले मानवीय संवेदना और पीड़ा और न्याय को क्यों रक्षिकार करने?"

बात कटुता के वायरे में बँधसी गयी।

मुझे विश्वास हो गया कि झगड़े का आरंभ होगा जो मैंने बात बदली, "रहने दो इन बातों को। सुनो गांधीजी, बम्बई में जीवन बहुत अच्छा रहा। सबमुख हर लेखक को बहुत आकर अवश्य रहना चाहिए।"

मेरा भारतीय मेरी बात को बिना सुने ही बोला, "गांधीजी, तुम हरामजादे को कभी मैं जान से मार दूंगा। और उसने हाथ का एंगक ऐसा किया जैसे उसके हाथ में छुरा होता तो वह उसे तुरन्त मार देता। मैंने तुरन्त कहा, "बम्बई में मुझे एक अत्यन्त हसीन लड़की मिली।"

एटेन्शन !

सब चुप और उनकी दृष्टि मुझ पर। लड़की !...मैंने देखा लड़की शब्द ने सबको सकते में ला दिया है और सचमुच मुझ पर भी पागलपन छा गया। मैं अपनी अन्तरात्मा के सत्य को इस तरह उगलने लगा जिस तरह कै होती है -- "हाँ गांधीब, मुझे एक लड़की मिली। डाँसर थी। यंग थी। मैं और मेरा एक एक्टर दोस्त उसके पास गये। मेरे दोस्त ने उस लड़की को मेरे परिचय में यह कहा कि मैं एक प्रोड्यूसर हूँ और फिल्म बनाने आया हूँ। मारवाड़ी हूँ। मारवाड़ी इस मामले में बड़ा ही प्रभावशाली शब्द रहता है। वस, लड़की हमारे चक्कर में आ गयी। एक दिन हम उसी ढाँर में बैठ कर ले गये। समुद्र के किनारे की प्रेम नगरी में।—मुझे मंटो की कहानी 'ठंडा गोश्त' याद आ गयी। उस लड़की की वही स्थिति थी, लेकिन इस पर उस सरदार जी वाली प्रतिक्रिया नहीं हुई। मुझे महसूस हुआ कि हम उस सरदार से भी गये बीते हैं जो उस अमानवीय कृत्य से जिया जास बन गया था और हम...!"

"जिओ मेरे राजा।" मेरा भारतीय बोला, "मुझे बन्वाई ले चलो।..." उसका सारा शरीर झिलने लगा।

और मेरे मन को झकका सा लगा जैसे सचमुच मैं भी असामान्य हो गया हूँ। हम मीड हाउस के बातावरण से प्रभावित होकर मैं भी पागल सा भलाप करने लगा हूँ। यह भलाप ही हमारे अन्तर का सत्य है। मैं सत्य और न उगल दूँ, इस भय से बाहर बला आया। मेरे साथ गांधीब भारतीय और पक्कार थे। बाहर अनरब कम हो गया था। हम बस की बस में लड़े हो गये। पोली वेर में गांधीब बोला, "घोह! अर्थ ही वेर कर दी। मुझे कल सुबह भरली ओफिस जाना है।"

मेरा भारतीय बोला, "लाना फैंको इस मीड हाउस पर, मेरी बेबी ने अपनी कितनी भोगवाई थी, खरीदना ही तुल गमा..." पाँच मजे का यहाँ बैठ हूँ।" और वह पक्काताप में झूठ गया।



और पत्रकार अपनी बाँधी हथेली पर समेटे हुए भलवार को बेचैनी से पीट रहा था ।

और मुझे महसूस हुआ कि अब हम सभी सामान्य प्राणी हैं । और जो आधारभूत सत्य है, वह है---बेबी के लिए कापियाँ लाना, भरसी वाफ़िस जाना और किसी विशेष कार्य के प्रति ग़ैर जिम्मेदारी करने के नाथ बेचैनी से भलवार को मोड़कर हथेली पर पीटना.....

---

## तस्वीर का दूसरा पहलू

७

जिस क्षण मेरे मन में यह विचार आया था उस क्षण बाहर जोर की बारिश के साथ-साथ सनसनाती हवा चल रही थी। सभी खिड़कियों पर पानी की बूंदें गिर-गिर कर बह रही थीं, सो भी अनेक रूपों में, जिससे मेरे मन में विभिन्न उलझी हुई कुछ अनुभूतियाँ उत्पन्न हो रही थीं। वे अनुभूतियाँ मुझे अपने कण्ठ-बिन्दु से बलग कर देती थीं और जोड़ी बेर के लिए मैं विमूढ़ सी अपलक उन खिड़कियों की ओर देखती रह जाती थी। न जाने कितनी बेर तक मैं बैठी रही, कब बारिश थमी। कब खिड़की के शीशे टाफ हुए और कब एकदम बायीं खिड़की के कोने में धुवका धुआँ पसेक उड़ा, मैं न जान सकी। जब नीकरानी ने खिड़कियाँ खोलना शुरू किया तब मुझे उस पसेक का अचानक ध्यान आया। मैंने पूछा, “किनारी ! वह चिड़ियाँ कहाँ गयीं ?” किनारी ने मेरी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा और अपने होठों पर स्मित रेखा बिखेरती हुई बोली, “उड़ गयीं सीधी जी, फुर !” इसने अपने हाथ से बड़ा नाटकीय संकेत किया जिससे मुझे बरबस हँसी आ गयी और वह जी मेरी पलक लपकते, खुप, फुर हो गयी।

एक सन्नाटा गहरा सन्नाटा छा गया। मैं उसे प्रणत भरी दृष्टि से देखती रही, देखती रही, लेकिन सहृदय मेरे

कानों में किनारी के शब्द फिर । गूँजे, 'उड़ गयी बीबी जी फुर्र !'

उड़ गयी, उड़ गयी ! मैंने सोचा, चिट्ठिया की तरह मुझे भी उड़ जाना चाहिए । यह सोने का पिंजरा व्यर्थ है, यह लोकप्रियता व्यर्थ है । जीवन में सबसे पहला सुख आराम का सुख है । वह नहीं, तो यह सब आडम्बर है, व्यर्थ है ।

प्रेमा के मानस पटल पर अतीत तौर आया—

यह एक प्रसिद्ध नर्तकी है । उसके रूप-सौन्दर्य और गुण की सर्वश्रद्धा है । लोग उसका मूल्यांकन करने इस तरह गले आते हैं जिस तरह साहब के छतों पर मधु-मक्खियाँ । उससे मिलने के लिए बड़े राव-रईस तरसते हैं । लक्ष्मी उसके चरणों में है । फिर भी दिल में घुटन और व्यग्रता क्यों ? क्यों लगता है कि यह सब व्यर्थ है, व्यर्थ ! उसके सामने 'विभ्र' का चेहरा झूम गया । विभ्र, एक तरुण-युवक ! उसे दिल से चाहता था । उसने उससे मिलने की कितनी बार कोशिश की थी । पर उसकी आसिम बुढ़िया माँ ने उसे घर में बसने नहीं दिया था ।

'बीबी जी, यह चित्रकार आपसे भेंट करना चाहता है'—एक सुबह उसकी नौकरानी किनारी ने एक तैल-चित्र उसके सामने रखा । वह चित्र रङ्ग का हुआ था । उसने अनिच्छा से उसे उठाया । वह हैरान रह गयी । घूँघट के अलगाटन में उठाया चित्र ! उसने उस चित्रकार को बुलाया, बिठाया, चाय पिलायी और पूछा, "आपने मेरा 'मह' चित्र बनाया है ?"

"जी !"

"मुझ से मिलकुल विपरीत !"

"जी, भारी का चरम सत्य तो यह है कि वह दुल्हन बनकर ससुराल जाए, माँ बनकर अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त करे और अपने गृहसंसार को आनोक्त करे । आप नर्तकी बनकर अपने अनुपम रूप से केवल धन इकट्ठा कर रही हैं । शील, भमता और सौम्यता को भुलाकर आप केवल बाह-बाह बूट रही हैं । जीवन और रूप जीवन के स्थिर सत्य नहीं हैं । स्थिर सत्य है प्रेम और परिवार ।" उसने प्रेमा की ओर

नहीं देखा। नीची गर्दन किए हुए कहता ही रहा, "मैं एक महीने से आपका नृत्य देख रहा हूँ। आपके यहाँ लगे अक्लीस चित्र देखता हूँ तो मन कई रावलो से उद्विग्न हो जाता है। कई बार मिलने की चेष्टा की पर सफल नहीं हुआ। आपके नौकर और आपकी भाँ ने मुझे धुत्कार दिया जैसे मैं कोई खुजसाया हुआ कुत्ता हूँ। आपको मायूम नहीं कि मैं एक लक्षपती आप का बेटा हूँ। माँ-बाप बचपन से ही मर गये। चाचा का मावसावादी बेटा रमेश मेरी देख-रेख करता है। वह नितान्त पञ्चात्म-वादी और कठोर ब्रह्मचर्य का पक्षपाती है। आपके पोस्टर उसी ने जलवाये थे। मुझे भी उसने रास्त दिखायत थे रक्की है कि मैं आप जैसी निर्जञ्ज-वेशम और अरिजहीन नर्तकी के पास भी न फटकूँ। पर अपने को न कर सका। आपका व्यक्तित्व और सौन्दर्य क्या मेरे मन पर छासा ही गया और मैं आपसे मिलने के लिए बेचैन हो उठा।"

"आप चाहते क्या है?" प्रेमा ने पूछा।

"सच-सच कहूँ?"

"हाँ"

उसने एक पल प्रेमा की ओर देखा, फिर शर्म से सिर झुका लिया। फर्श की ओर देखता हुआ बोला, "मैं आपसे शादी करना चाहता हूँ।"

जैसे एक गहल बहरा कर गिर पड़ा हो, प्रेमा के दिल में जोर का धमाका हुआ। वह अनाकूली उसे देखती रही। उसे कुछ भी कहते नहीं क्या। लेकिन विम्र नीची गर्दन झुकाए हुए कह रहा था, "मैं आपसे शादी करना चाहता हूँ। सच, मैं आपके बिना नहीं रह सकता। हर घड़ी, हर पल, मुझे आप ही का ख्याल आता है। मैं आपको कोई भी तकलीफ नहीं दूँगा। मेरे पास सब कुछ है।"

युवक की स्पष्ट बात ने प्रेमा के हृदय में गन्धन पैदा कर दिया। वह कुछ देर तक विचारती रही। उसने एक कार खरीदार की तरह पैमी दृष्टि से विम्र को सिर से पाँव तक देखा और बोली, "मेरा अभी ऐसा कोई इरादा नहीं। मैंने इस पर अभी सोचा नहीं है।"

“सोच लीजिए। यह तो सत्य ही है कि आपकी जिन्दगी सदा ऐसी नहीं रहेगी। आपका यह रूप, यह चंचलता और यह चुस्ती सदा एक सी नहीं रहेगी। एक न एक दिन यह सब खत्म हो जाएगा। मेरा प्यार तब भी जीवित रहेगा—इसी गहराई के साथ।”

“आप अभी जा सकते हैं”—उसने बड़ी सहजता से कहा। “मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है। ऐसे प्रस्ताव लेकर मेरे पास बहुत से आते हैं। वे भी आपकी तरह सुन्दर और पैसे वाले होते हैं। एक करोड़पति भी मुझसे निश्चय करने को तैयार है पर मेरा अभी ऐसी कोई इरादा नहीं।”

विम्र हटा या गया था।

प्रेम। के बंगले के आगे उसकी परिचित बुढ़िया बैठी थी। उसने उसे एक भिपका दिया और आते यह गई।

उसके जाने के बाद प्रेमा के मन में उषल-पुषल मच गयी। ऐसा निश्चय, निर्भीक भक्ति उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसने उसकी बनायी तस्वीर को देखा, एकदम राजी-मन्जारी बूढ़ा। उसे क्या-क्या बना बना है उसने। भीरे धीरे उसके मन में विम्र की तस्वीर गहरी, और गहरी होती गई।

उसकी माँ ने आकर उसके ध्यान को भंग किया। वह बौक पड़ी। माँ ने कहा—‘सिठ सम्पत्तमान आए हैं। सुनो, जरा तरीकब से उनसे पौष त्रवार रुपये माँगना, समझी!’

लेकिन वह सेठजी से एक पैसा भी नहीं माँग सकी। उसकी माँ पर तो विम्र आ रहा था। लम रहा था, विम्र की बातों की धुँध पीरे-धीरे उसकी मन पर पतों की तरह जम रही है। वह अनमनी सी रही। सेठजी ने क्या कहा उसे जरा भी मालूम नहीं। वह उनकी हाँ में हाँ मिलाती रही। बीच-बीच में सेठजी मुँकला भी जाते थे, ‘क्या बात है प्रेमा ? आज तुम खोयी-खोयी क्यों हो ?’ तब उसने हँसकर उनके प्रश्न को टाल दिया था। माँ से शिकायत की थी। माँ ने गुस्सा होकर पूछा—“माँच तुम्हें क्या हो गया छोकरी ?”

“कुछ नहीं ।”

“रुपये मांगे ?”

“नहीं ।”

“क्यों ?”

“मेरे पास बहुत है ।”

“जितना रुपया है, उससे भी बड़ी जित्नी है । ए छोकरी ! मेरे कान सबास-जबाब सुनने के भारी नहीं हैं । मैं अपने हुक्म की तामील चाहती हूँ । कान जोसकर सुन ले । कल से ऐसी कोई शिकायत नहीं होगी ।”

प्रेमा ने कोई उत्तर नहीं दिया । व जाने क्यों बाब उसकी भाँसे गीली हो गयी ! उसकी इच्छा हुई कि वह फफक-फफक कर रोये । अपने आपको पीटा दे, जूब मटाए । वह बिहँककर बोली, “मेरी तबीयत खराब है । मैं सेठजी को नहीं रिक्का सकती ।” माँ स्तब्ध सी उसे निहारती रही । उसने मन ही मन कहा, ‘क्या हो गया है इस छोकरी को ?’ वह उस समय सान्त रही । जब प्रेमा भीतर जाने लगी तब उससे बोली, “यह जवानी जाने के बाद फिर नहीं आएगी, समझी !”

प्रेमा अपने विस्तरे पर निहाल पड़ गयी । उसने सोचा—‘जवानी बार-बार नहीं आती । तब विप्र.....हूँ, विप्र ने ही तो मेरे अन्तर में झलझल सच्चा दी है !’ उसे फिर विप्र याद आने लगा । उसने उसका बनाया हुआ चित्र देखा । नीचे लिखा था—‘बुल्लन’ । माँ उसे देखती रही । फिर उठी और थियेटर जाने की तैयारी करने लगी ।

बाहर निकलते ही उसे बुढ़िया की खिलखिलाहट सुनायी दी । वह चौंक पड़ी । बुढ़िया ने टेढ़ी आँखें करके अपना पचिस उसके भागे फैला दिया । उसने एक भवन्नी डाल दी । बुढ़िया सदा की तरह अधुरा हँसी हँसती हुई ओपंके में बजी गयी । उसके निर्वाह का साधन भाजकाल प्रेमा के अतिथि ही थे । प्रेमा ने माँ से पूछा, ‘भाँ, यह बुढ़िया कौन है ? यह मुझे इस तरह बुर-बुर कर क्यों देखती है ? मुझे इससे कभी-कभी बंद

सगता है ।”

“पगली है । भिन्नारिण है । वेकार मत डरो ।”

लेकिन उसे सदा की तरह बुढ़िया की हँसी परेशान करती रही । विप्र ने कितनी सहजता से कहा था—मैं आपसे शादी करना चाहता हूँ !

उस रात वह गहरी नींद न सो पायी । सुबह फिर विप्र आया । उसने अपने प्रश्न का उत्तर माहा, “आपने क्या सोचा !”

“किस पर ?”

“शादी के लिए ।”

‘वह हँसी—कुसंत ही नहीं मिली !’

“यह भूल क्यों बोलती हैं ?” उसने तपाक से कहा । “आपने जरूर मेरे बारे में सोचा है । न सोचा होता तो मुझे आपकी नौकरानी सम्मान से भीतर न जाने देती ।”

प्रेमा के पावों पर लज्जा की रेखाएँ धीरे धीरे गयीं । यह निश्चय ही हमर-उमर देखने लगी ।

“आज आपकी नौकरानी के होठों पर भी यही मुस्कान थी । मैं भोंप गया । वह बड़ी खूबसूरत है ।” फिर विप्र उसकी कला की प्रशंसा करता रहा । बोला, “मैं इसीलिए नहीं बनना चाहता था, परन्तु पिताजी की अन्तिम इच्छा यही थी इसलिए कर रहा हूँ । मैंने बिनाकारी अपना प्रिय शौक बना लिया है । साथ ही तुम्हारे सम्पर्क से मैं अपनी कला को सुवर्धित कर सकूँ ।”

“आप जरूरत से ज्यादा सोच रहे हैं । मुझे.....दरअसल.....और वह एकाएक चुप हो गयी । विप्र उठने लगा । प्रेमा ने कहा, “आप मुझे आज शाम को जरूर मिलें ।”

शाम की वे दोनों धूमने गये । पहली बार प्रेमा की माँ का भावना उनका । वह सेंट सम्प्रदाय के होते हुए किसी को भी अपने घर में नहीं आने देगी । वह उस समय जहर का चूट पीकर रह गयी । वे दोनों

सागर के किनारे एकान्त में बड़ी देर तक बाते करते रहे। एकाएक प्रेमा ने पूछा, "बिप्र वह बुढ़िया कौन है?"

"वह भी एक दिन तुम्हारी तरह अभिनेत्री थी। शायद इसी जगले में उसकी अपनी जगहानी खली गयी, कक्ति समाप्त हो गयी। पीछे कोई नहीं रहा। रूप-जीवन के लोभी बने। खोप रह गये—ये दुर्दिन, दुस्कारें और पीडाएँ। उस समय उसने भी नहीं सोचा था कि कभी मेरा सब कुछ खरा जाएगा। प्रेमा, जीवन दो चरम बिन्दुओं पर टिका है—दो विपरीत चरम बिन्दु। एक सुख का एक दुःख का।"

प्रेमा बहुत उबास हो गयी। वह बोली ही नहीं। उसके कानों में धार-धार बुढ़िया की वह भेदभरी हँसी गूँज उठती थी। प्रेमा के सम्मुख मार्गों उन भेदभरी हँसी का रहस्य खुल गया—दर्पण की तरह साफ और स्पष्ट।

माँ ने पूछा, "बाना साएगी?"

"नहीं"—कड़कर वह सो गयी। उसने निश्चय किया कि वह मित्र से ही शादी करेगी।

"तू शादी करेगी? छिनाज कहीं की! मारते-मारते तेरा बस निकाल दूँगी।" माँ ने डायन की तरह घुराकर कहा।

"निकाल दे हम! मारना है तो अभी मार दे। मैं बिप्र से शादी करूँगी और बहर करूँगी।"

"बुरा रह!" माँ ने उसके गाल पर चाँटा मारा फिर प्रवर्धविक्षिप्त सी वह प्रेमा पर अपट पड़ी और उसे पागल कुत्ते की तरह भौंचा। प्रेमा उसी हृदय से बोली—"मैं उससे शादी करूँगी, जरूर करूँगी। तू मुझे रोकेंगी तो मैं पुलिस की मदद दूँगी। तू मुझे शादी से नहीं रोक सकती, कभी नहीं रोक सकती।"

"फिर तू कैंसे से शादी कर दे। तेरी सम्झना पूरी हो जाएगी और वह बग़ा भी नहीं करेगा। अपना बलास हूँ, नमक हलासी ही करेगा!"

"प्रेमा नहीं हो सकता।"



“क्यों नहीं हो सकता ? क्या मीने बीना से शादी नहीं की थी ? हमारे यहाँ ऐसा ही होता थाथा है ।”

“फिर मुझे भी तेरा तरह अपनी बेटों को मारना-पीटना पड़ेगा, नवाना पड़ेगा । यह चिनीना सिलसिला कभी बन्द न होगा । अगर कोई सन्तान न हुई तो बरवाने की बुढ़िया की तरह सड़कों पर भीख माँगनी पड़ेगी । तुझे केवल पंसा चाहिए, ये सारे पैसे ले ले । मैं तन के कपड़ों में ही बिप्र के साथ खली जाऊँगी ।”

माँ के अपानुषिक अत्याचार प्रेमा को अपने इरादे से नहीं बिगा सके । जिरम भार खाते-खाते सूज गया, जगह-जगह धरोचें पड़ गई पर वह अपने इरादे पर अटल रही ।

उसके तीसरे दिन बिप्र का बड़ा भाई रमेग धाया । सावी पोशाक में भी उसका । रोबीला चेहरा बड़ा प्रभावशाली लग रहा था । उसने प्रेमा से बातचीत की धीरे-धीरे बानबीन की उपरात से उसने बला में अपने होंठ काट लिए धीरे बीसकर बोला--“यह भी नाटक है । उसके किशोरपन में तुमने अपने रूप से वासना को जागृत कर दिया है । वह क्या समझे कि तुम अभिनेत्रियों का यह भी एक अभिनय है ! सोचती हो, उसकी सारी बीसत हड़प लूँ, समाज और परिवार से उसका सम्बन्ध तुड़वाकर उसकी प्रसिद्धा की मटिया-मेढ कर दूँ ! बाहू रे जमाने, कैसे-कैसे निर्बन्धी लोग हैं ! भाई से भाई की लड़ाई, समाज में उसकी एक कौड़ी भी कीमत न रहने देगे और फिर उसे बरवादियों के तूफान में छोड़कर कहीं चले जाएंगे ।”

प्रेमा ने माँसू भरकर कहा “मुझे उसकी एक भी बीख नहीं चाहिए । मैं केवल उसे चाहती हूँ और वह मुझे । उसी ने मुझसे पहले प्यार किया था ।”

“तुमसे एक नहीं, सैकड़ों लड़के प्यार करते हैं, ठीक बिप्र की तरह । फिर तुमने बिप्र को ही क्यों चुना ?”

“इसीलिए कि वह कसाकार है ।”

‘वही वह लाशों का मायिक है। कलाकार तो इस घरेली पर बहुत है। तुमने किसी गरीब कलाकार को क्यों नहीं चुना?’

‘प्यार जिनसे हुआ, उसी को चुन लिया, रमेश बाबू! मैं आपके गाँव पड़ती हूँ। मुझे इस चकाचौंध से निकलने दीजिए। मुझे किसी की मूर्त, किसी के घर की लाज और लक्ष्मी बनने दीजिए।’ प्रेमा ने सच-मुच रमेश के पाँव पकड़ लिए। उसकी आँखें घर घायी थी।

‘‘तुम मर्तकी, बेसया और बाधाक औरतें कभी किसी के घर की लाज नहीं बन सकती। तुम्हारा काम है—घर उजाड़ना और समाह करना। वही तुम करोगी। तुम विप्र के जीवन में नहीं, उसके बाप के सपनों के खेल रही हो, उसके भाई के प्ररमानो में खेल रही हो। आज मैं उसका समा भाई नहीं फिर भी उसके जीवन के लिए धड़े से बड़ा बलिदान दे सकता हूँ। यदि तुम चाहती हो कि हमारे आपस में किसी तरह की खाई न पड़े तो विप्र का ध्यान छोड़ दो। मुझे तुम जैसी औरतों में सक्त नफरत है, नफरत!’’

‘‘लेकिन...’’

‘‘बचन दो कि तुम आज से उसमें नहीं मिलोगी। तुममें त्याग की कितनी क्षमता है, मैं देखना चाहता हूँ। प्रेम त्याग में डूबी सहाय बनता है, समझी?’’

‘‘मैं आपको बचन देती हूँ कि मैं आज से विप्र से नहीं मिलूंगी पर आपको भी मुझे एक वचन देना पड़ेगा कि आप मुझसे बराबर मिलते रहेंगे।’’

‘‘लेकिन मैं...।’’

‘‘सोच लीजिए।’’

‘‘अच्छा, भिन्नता रहूँगा।’’

वह चला आया। प्रेमा बिस्तारे पर धोपी पड़कर फूट-फूटकर रो पड़ी। बहुत देर तक रोती रही। उसने जब गहरी नींद आ गयी तो उस की माँ अपने होठों पर कुटिल मुस्कान बिखेरती हुई तबो देर तक खड़ी

रही। फिर प्रसन्नता से उसका माथा झूमकर कमरे में अन्धेरा कर दिया।

X

X

X

एक वर्ष समय के पंख पर सवार होकर न जाने कहाँ उड़ गया! यह भिखारिण किसी कार के नीचे आकर भर गयी थी। उसकी धत-विशत लाश को देखकर प्रेमा उस दिन खाना नहीं खा सकी। वह विप्र से इस बीच कभी नहीं मिली। कई बार विप्र ने चेष्टा भी की। उसने साफ इन्कार कर दिया। धीरे-धीरे विप्र उससे दूर हो करने लगा। आदर्श चाची रमेश प्रेमा के प्यार में फँस गया। वह प्रेमा के प्यार में इस तरह मग्न हुआ कि उसने अपने भाई विप्र, परिवार और समाज किसी की भी परवाह नहीं की। दोनों भाईयों में बँटवारा हो गया। रमेश ने अपनी जायदाद का तीन चौथाई हिस्सा प्रेमा के नाम कर दिया और शेष वह चाची के भवसर पर भेंट करनेवाला था। यह खबर जब विप्र को मिली तब उसने उन दोनों का नाम लेकर झुक दिया। धीरे धीरे धूल होकर उसके चेहरे पर चमक उठी। उसने जलते हुए स्वर में कहा, 'दोनों कमीने हैं, कमीने !'

ज्यों-ज्यों चाची का दिन करीब आने लगा त्यों-त्यों विप्र का मान-सिद्ध संतुलन बिगड़ने लगा। प्रेमा से भलग होकर उसकी चिन्तकला ने एक नयी करवट ली। उसने एक नये तरह की चिन्तकाली प्रारम्भ की, उसने उसकी क्याति देश-विदेशों में फैला दी। वह प्रसिद्ध कलाकार हो गया पर प्रेमा को वह धूँसा करके भी न झूल पाया। आत्मा की महारह्यों में प्रेमा नग्न गयी थी। उसे रमेश पर बड़ा आश्चर्य होता था। जब-जब वह मकेला होता तब-तब रमेश के बारे में सोचता। उसे लगता कि मानव-चरित्र बड़ा ही दुर्बल और दुनिवार है। संसार में निश्चल प्रेम जैसा कुछ भी नहीं है। वे उत्तेजना और कूँटाएँ उसकी कला को एक सजीव निसार दे रही थी।

प्रेमा से रमेश कहता, 'विप्र मुझसे बहुत जलता है प्रेमा। तुमने

मुझे ही सच्चा प्यार दिया है। मुझे जीवन की सहजता और स्वाभाविकता का ज्ञान कराया है। यही सच्चा आनन्द है कि आदमी केवल आदमी की तरह जिये मैं तुमसे सादी करूँगा। हमारे बच्चे होंगे। वे बच्चे सचमुच महान् प्रतिभासम्पन्न होंगे।”

प्रेमा उसकी भावुकता पर अंकुश लगाती, “आवेश में मुझे बाहों में लेने की कोशिश मत करो। यह सही कि मैं तुम्हारी हूँ पर शरीर-स्पर्श विवाह के उपरान्त ही सम्भव होगा।

“तुम्हें मुझ पर अविश्वास क्यों होता है प्रेमा ? मैंने तुम्हारे लिए अपना आदर्श, धर्म और इच्छत छोड़ी, विप्र को दुःखमन बनाया। जो समाज मेरी राहों पर अपनी पलके बिछा देता था, वही आज मुझ पर झुकता है। मेरी कोई प्रतिष्ठा नहीं। प्रेमा, तुमने मुझे पागल कर दिया है। भ्रम अविश्वास की बात भी मुझे दुःख लगती है। फिर पन्द्रह दिन के बाद तो हमारी शादी भी होने वाली है।”

“पन्द्रह दिन और प्रतीक्षा करो।”

प्रेमा ने जान-बूझकर विवाह का निमन्त्रण विप्र को भिजवाया था। विप्र का मन जल उठा। पूरा, जो साँप की तरह घूँसली मारे उसके अन्तः में बैठी थी, फुफकार उठी। उसे लगा कि आदमी दूसरों की नीचता और कमीनापन क्यों सहता है ? वह इस प्रश्न पर बड़ी देर तक विचारता रहा। धीरे-धीरे उसके सँहरे की आलीशानता और लौम्यता क्षुप्त होने लगी। उसने निर्णय किया, आदमी इसलिए सहता है कि वह दूसरों से कमजोर है। यह कमजोरी ही उसे सब क्रोध सहने को बाध्य करती है। वह उठा, कपड़े पहने और प्रेमा की शादी में शामिल होने के लिए चल पड़ा।

भीड़ का समुद्र प्रेमा के बँगले पर समझ पड़ा था। बड़े-बड़े सरकारी अफसर और कलाकार वहाँ उपस्थित थे। बैदिक पद्धति से विवाह होगा, इसलिए मंत्रप भी सजाया गया था। शहनाई बज रही थी। प्रेमा बुझल बन रही थी। सजते-सजते उसने अपने समस्त श्राव विप्र का वही वेश-

या हुआ चित्र दुल्हन रस लिखा था। उसकी इच्छा थी कि वह ठीक वैसे ही गहने पहनेगी, वैसा ही मेक-अप करेगी। सब कुछ कर चुकने पर वह मंडप की ओर चली। रमेश अपनी पोशाक में बहुत जंच रहा था। विप्र धीरे-धीरे धागे बड़ा। उसने मन-ही-मन दोहराया, 'नीचता और कमीनापन सहना भी धन्याय होता है।' उसने अपनी बेच पर हाथ रखा।

लोभ प्रेमा के अद्वितीय रूप को देखने में मग्न थे। विप्र की भाँसे भी कुछ क्षण उस सुखचमत् को देखने के लिये ठहर गयीं। मन का भाक्रोश भिन्न गया एक पल के लिए। फिर वह सावधान हुआ और भागे बड़ा।

प्रेमा वेदी के समीप पहुँच गयी थी। रमेश ने उसकी ओर तुष्ण्या से देखा। एक धीमी सी आवाज आयी—'कुछ भी हो, सारी प्रतिष्ठा को पूल में मिलाकर भी रमेश ने बड़ा कीमती हीरा पाया है।'।

विप्र ने सोचा, 'मैं खेल खत्म कर दूँगा।' वह भीड़ को बीरता हुआ बढ़ रहा था। सागर की तरफ़ अनेक जहरें उसके अस्तित्व को नष्ट रही थी। सभी अवस्थातः प्रेमा ने जोषणा की, "वह शायी नहीं होगी।"

"क्या कहती हो प्रेमा? तुम्हारा विभाग ठीक है?" रमेश ने काँपते स्वर में पूछा।

"विष्कुल"—प्रेमा ने प्रभु के भक्त की तरह अपने दोनों हाथ सटा-कार कहा। "मैं यह शायी नहीं कहूँगी, बरातियो! यह सब नाटक था, एक खेल था। वह रमेशजी, जो आज से एक साल पहले ब्रह्मचर्य, भ्रातृव्य और सात्विक जीवन के हामी थे और हम जैसी सड़कियों को बालक कहकर सनसे दूर तक रहने के नारे लगाते थे, आज खुद इस कीचड़ के लिए अपना सर्वस्व विसर्जन कर चुके हैं। मैं इनसे पूछती हूँ कि अब मेरे खानदान और खून में कौन सा अन्तर आ गया है? मैं वहीं हूँ जो आज से एक साल पहले थी। मैं इनसे पूछती हूँ कि जो औरत कभी भी किसी के घर की लाज नहीं बन सकती, वह आज इनकी दुल्हन, पत्नी और प्रशंगिनी कैसे बन सकती है? ये समाज के ठेकेदार और दुधारक, हम जैसी निवश नारियों के जीवन के सञ्चार की कभी नहीं सोचते। नयीगणना

कोई हमें नारकीय जीवन से निकालने की भी चेष्टा करता है तो ये बड़ी-कोई दीवारें खड़ी कर देते हैं। कहते हैं, तेरी जैसी औरतें प्यार को केवल बड़ी ताटक समझती हैं क्यों रमेशजी, क्या मैं गूठ कहती हूँ ? मैंने सच्चे हृदय से रमेशजी के भाई को प्यार किया था। मैं उनकी तुल्य बनकर गृहस्थी बराना चाहती थी। मैंने उनके साथ जीवन की स्वाभाविकता के कई सुनहरे सपने देखे थे। इन्होंने उन सब पर सुपारपाठ कर दिया। तब मैंने भी निश्चय किया था कि इन्हें ऐसा सबक दूँगी कि वे तो क्या हमारे जैसे हजारों सुधारकों की आँखें खुल जाएँगी। मैंने इनसे केवल प्यार का नाटक खेला था। इन्हें किस तरह चाहा, जंगलियों पर लबाया। इन्होंने मेरे पीछे किसी को कुछ नहीं समझा। अपनी सारी जायदाद भी धीरे-धीरे मेरे नाम करते गये। मेरी सालकी माँ भी मेरे इस नाटक से खुश थी। भामिनी भी मेरी ही हुई। मैं इनसे पूछती हूँ कि जिस व्यक्ति से मैंने सच्चा प्यार किया, उसकी हालत क्या हो सकती है ? रमेशजी से मैंने केवल प्रेम का डोंग किया है। मोह, मैंने एक वर्ष-तक किसनी जमाना देवनाएँ सही है। विप्र मेरे प्यार में भागल से हो गये हैं। वह मेरे नाम पर धुक्ता है। मैंने सब कुछ सहा।" वह कहकर वह रो पड़ी। उसने आँधुमों को पोंछते हुए रमेश से कहा, "जीजिए, अपनी आयदाद के सारे कागजात और बत्ते जाइए। मुझे केवल आपके डोंग को भिठाना था ताकि आप यह जान लें कि प्रकृति के सहज व व्यवस्थित जीवन जीने का सभी इंसान को बराबर का हक है।"

रमेश पत्थर हो गया। विप्र की पत्नी आ गया। उसने बुझा जेब पर हाथ नहीं रखा। वह संभवतः प्रेम के सम्मुख खड़ा गया। प्रेम से उसे देखा और उसने प्रेम को। दोनों की आँखों में भाँस-समाये नहीं। किसी ने पीछे से आवाज लगायी, विप्र की खासी प्रेम में कार खी जाएँ !  
देव-मंत्र नूँजते लगे। रमेश का कहीं पता नहीं था।

## एक मुस्कान : एक जिन्दगी

तिजारत

मैं तिजारत हूँ। भादि काम से लोग मेरा प्रयोग कर रहे हैं। आदान-प्रदान के रूप में, सिक्कों और वस्तुओं के रूप में, अनेक तरीकों से, अनेक रूप में। मेरा कोई धर्म नहीं, कोई नैतिकता नहीं और कोई मान बर्बाद नहीं। हरएक ने मुझे अपनी सुख-सुविधा के लिए हर सचि में बाँसा। लेकिन आज मैं दुखी हूँ। इस घर में मेरी एक बच्ची का तिजारत किया जा रहा है। यह बारह साल की प्रबोध और अलौकिक कन्या जिसके चेहरे पर खुशियों का समन्दर लहरा रहा है। जिसकी बड़ी-बड़ी आँखों में जीवन की साज के अंकुर फूटने लगे हैं। जिसकी गर्म-गर्म साँसों में अनागत उम्माद की खुशबू है। उस कन्या को उसकी माँ और उसके बाप मिलकर बेचना चाहते हैं यानि तिजारत करना चाहते हैं। किसनी बड़ी बेइश्याफी है, कितना बड़ा जुनाह है, पर इसारे देखा में ऐसे और-जुल्म ज़्याबतियाँ सरेआम चलती आयी हैं।

यह आपका जवा मेहसान है। यह बारह साल की कन्या को अपनी अधोगिनी बनायेगा। उसकी उम्र ४० के लगभग है। उसकी आँखों की चकत्ती हूँ बासबा के सारे दाँत गिर गये हैं। यह एक विद्रूप-सा लगता है। उसके साँसों की गर्मी बुझ गयी है। इसका जीवन इससे अलग होकर इसकी मृतक परनी की अमान संतान में चला गया है।

यह इस कन्या को बरेगा ।

तिजारत शुरू । मेरी माँ बर आती है । तीन हजार में एक कन्या का तिवारत हो जाता है । मैं जोर से चीखती हूँ, चिल्लाती हूँ कि मेरा ऐसा दुरुपयोग मत करो, ऐ समाज और धर्म के ठेकेदारों ! देखो, इस तिवारत को देखो, यह मासूम फूल किस जलनाब को सौंपा जा रहा है । अरे देखो न, इसके पशुरियों से गुनाही होंठों को जो अपनी मासूमियत की वजह से तुम लोगों से प्रार्थना भी नहीं कर सकते हैं । उसका नाम कातून के बरवाले भी नहीं बटखटा सकता क्योंकि यह एक माटी की सबसे पवित्र और सामोना तस्वीर है । हम बहरे और अन्वे हैं ।

### हवन की अग्नि

मन्त्रों, पावन ऋचाओं से विविधित शुद्धित है आहुतियाँ दी जा रही हैं । मेरे सगल दुःखों और बचपन दुःखा-दुःखिन बने बैठे हैं । प्रोत्तें रंग-रंगीले, बटखवार और बमकते भ्रमरों वाले और सलमे-सितारों वाले छोड़ो छोड़े संगल-गीत गा रही हूँ । मेरी हवा हो रही है कि मैं बमककर इन सबको लीम जाऊँ, जो बूढ़े के साथ एक किचोरी को सौंप रहे हैं । ... लेकिन ये चतुर-पतित लोग मुझे बड़ी खूबी से संयत्ति में रक रहे हैं । मैं हवन की पवित्र अग्नि प्राण पाप को जलाने में असमर्थ हूँ । सोता को अपने भगल-भाँचल में लेकर उसकी अपाधा को रखा पर आज मैं इतनी शक्तिहीन हो गयी हूँ कि एक प्रबोध वासिका को नहीं बचा सकती । जो, फेरे भी पड़ गये । बहकरी हुईं धुलधुल परायी हो गयी । कोई गा रहा है—बाबुल छोड़ अभी तेरा देव ... । सब, यह छोड़ गयी । अपना भंजना, अपनी सखियाँ और अपना बचपन !

### शोभा के फूल

यह बूढ़ा उस किचोरी की ओर आ रहा है । किचोरी उसे विस्मृत सी लगती है । हम फूल, युवावस्था के मायक और सुगंध बिखरेने वाले फूल, प्राण बिना स्पर्श के ही मुकामये हैं । अपनी खूबसूरती को हम प्रदर्श-



ही छोड़ आये है। निर्गन्ध वाले फूल है, सुर्वा और चूड़।

किशोरी आती है। चुपचाप बैठ जाती है। एक-दो को उसके शरीर का स्पर्श होता है। कोई उत्तेजना और प्रतिक्रिया नहीं। वह बड़ी सहजता से एक फूल उठाती है और उसे सूँघती है। फिर एक पंखुरी तोड़कर बिरोर बेती है। हम हँस पड़ते हैं। सोचते हैं—अभी बूढ़ा भाकर तेरी भी पंखुरियाँ मोच डालेगा। हम फूल उदास हो गये हैं। सूने घर का सप्ताह हम में छा गया है।

धाह है। बूढ़ा आ रहा है। हम घृणा से भर आते हैं। जोर-जोर से उस पर झूठ रहे है पर उसकी आँखों में मृत्यु को प्राप्त करने वाली वसन्तहीन पासना दहक रही है। वह मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिक की तरह सोच-सोचकर धीरे-धीरे कदम उठा रहा है। किशोरी उसके चेहरे की ओर टुकुर-टुकुर देख रही है। उसकी आँखों में प्रेम है। गम में द्रव्य है। बूढ़ा उसकी उस सीली और मोली नजर को नहीं सह सकता है। पहरा जाता है। भोग जाता है। पर उसकी नजर बूढ़े के चेहरे पर जमी हुई है। अनायास वह कह देती है, “बाबा।”

विभक्तिगत क्रोध करके किसी पर दूँट पड़ी हों, ऐसा महसूस हुआ उस बूढ़े को। यह रांप की तरह अपने होठों पर अपनी जीभ फेरता हुआ बोला, “मै-मै, क्या तेरा बाबा हैं ? मोल, मोल, क्या मैं तेरा बाबा हूँ।” बूढ़े का गुस्सा विकृतियों से भर आता है।

किशोरी उसी अभिप्रेत में कहती है, “कुछ लगते हो जैसे ही।”

“मैंहीं, मैं तुम्हारा पति हूँ, पति।”

“ओह !” किशोरी लपकर अपना मुँह नुँघट में छुपा लेती है और हम अपनी आँखें मन्थ कर लेते हैं क्योंकि बूढ़े की बाहें फैल गयी थीं।

×

×

×

### धौवन का उन्माद

मैंने आश्विन उसके अंग-अंग में प्रविष्ट कर लिया। मैं अनंग का सबसे शक्तिशाली शस्त्र हूँ। देवताओं से लेकर जानवरों के अंगों में प्रवेश

करके उन्हें भ्रंषा कर देता हूँ ।

किशोरी का सारा शरीर मुक्त में डूब गया था । जब वह बूढ़ा खाँसने भी लगा था और जब किशोरी आकाश से चाँदनी बरसाकर उसे भिगो देती तब वह मादक झगड़ाइयों के साथ न जाने क्या सोचती कि उसके मन में अश्रुओं से भर जाते और वह बूढ़े की ओर निःशून्य की चेष्टा करती । बूढ़ा, चाटियों में खोई हुई रास्तों से टकराती जैसी खाँसी करने लगता और यह तड़पकर कहता, “अर्थ नहीं आती, वेदार्थों की हृष्ट है, पति बीमार है और तुझे अठेरलियाँ सूझ रही हैं ।”

यह संसार की अप्रत्या की तरह मादक स्वर में बोली, “देखो, आकाश में अन्ध सुन्दर रहा है, उसकी चाँदनी मेरे अंग-अंग में अग्नि जला रही है । हवा भी गल-गल में प्यार जगा रही है ।”

“ऐसी आग है तो किशोरी में बैठ जा । पर शुद्धि की शीपों जीवन को लेकर इस तरह हाय-हाय नहीं मचाती । जाननी सबको आती है, अज्ञान के पति भी बूढ़े होते हैं पर तेरा मन्दर। तो ‘मातो’ अज्ञान के ही अलग है ।”

उसका सारा प्यार कुछ के छोटे से सरोवर में मिस्र जाता । आसना और उल्लंघना बर्फ की तरह ठण्डी पड़ जाती । वह अपने भाग्य को कोसती हुई सो जाती ।

पर मैं उन्माद हूँ ।

मैं जिस पर सवार हो गया और अगर उसे क्षान्ति नहीं मिली तो वह भटक जायेगी । वह रात भर सो नहीं पाती, दिन को जीन नहीं पड़ता । उसका हृदय रात-दिन भीम गर्जना करता रहता है और उसकी आँहों से उसके घर का वातावरण अजनसय रहता है । उसे बार-बार भ्रम होता है कि इस घर में आग लगने वाली है । उसके और उसके पति का झगड़ा छोटी-छोटी बात पर हो जाता था ।

मैं उन्माद हूँ, एक चेष्टा का पानक्षपन ।

## छिनाल का प्रवेश

मैं छिनाल हूँ जैसे मेरे कई पर्यायवाची शब्द हैं। मैं तभी किसी औरत के सिर पर सुसोभित होती हूँ जब वह अपने पति के होते हुए दूसरे से प्यार करे।

प्यार।

बी गालिय के शब्दों में यह वह प्राग है कि जो ना जगाये ना लगे और न बुझाये न बुझे। यह प्राग तेज नहरों की तरह इसकी नस-नस में बौहने लगी है। इसके बस में होने के बाद प्रेमी और प्रेमिका मृत्युंजयी बन जाते हैं। निरुदर, निर्भीक बन जाते हैं, स्वतन्त्र हो जाते हैं। शायद प्राग जानते होंगे पंजाब की सोनी नदी पार करके जाती थी और राजस्थान की चनगा आधी रात को 'रामू' का द्वार खटखटाती थी और यह किशोरी।

"मह बवा लो।" एक नीली आँखों वाले युवक पड़ोसी ने बड़ी निमज्रता से किशोरी के हाथ में थोड़ी दे दी।

"कुछ फल भी आने हैं।"

"दोपहर को ला दूँगा।" युवक चला गया।

किशोरी का पति कुछ अधिक बीमार है। तबला कन्हैया पास वाले मोहल्ले में पान की दूकान करता है, बीड़ी बेचता है। गेहूँ का रंग है पर आँखें जैसे स्मृति का धारा प्यार हुए व क्षामोक्ष होकर उसकी आँखों में लो गया है। बूढ़े को कन्हैया जरा भी पसन्द नहीं है पर वह अभी विवश है। क्या और फल नहीं आये तो वह मर सकता है और उसकी झुड़ी लमसाएँ मृत्यु का बड़ा भय खाती हैं। वह मरना नहीं चाहता। 'उसकी सिसकती हुई साँस हर घड़ी जीने की कामना और प्रभु से चिरायु की प्रार्थना करता है।'

दोपहर हो गयी।

कन्हैया फल लेकर आ गया। उसने फल बेने के लिए हाथ बढ़ाया। दोनों के हाथ छू गये। रोमांच हो गया—किशोरी के सारे अदन में।

उसने भरपूर दृष्टि से कन्हैया की ओर देखा । नजरें टकरायी ।

“साफ करना ।”

“क्यों ?”

“आपके हाथ को मेरे हाथ ने छू लिया न ?”

“कोई बात नहीं ।”

बूढ़ा भीतर से बड़बड़ा उठा । उसका बड़बड़ाना कम और लांछी तेज थी । उसने क्या कहा, वे दोनों नहीं सुन सके । कन्हैया ने तयभीत स्वर में कहा, “वे नाराज हो रहे हैं । शायद उन्हें मेरा यहाँ आना अच्छा नहीं लगता है ।”

“न लगता है तो न लगे, मुझे अच्छा लगता है । आप शाम की जाकर आना । मैं आपको लीर बनाकर खिलाऊँगी । प्रातः मेरे विवाह की शांति की वर्षगांठ है ।”

“कब्र आऊँगा ।”

जैसे उसमें प्रवेश कर गयी । बूढ़ा भीतर से चीखा, “किससे इतक सड़ा रही है खिला ?”

मैं हँस पड़ी ।

किशोरी कन्हैया को विवाह करने भीतर गयी । खोर से पाँच पटक कर मझा, “क्यों खोर मचा रखा है । मेरा जी तो बूढ़े की तरह कुतर-कुतर कर ला गया । क्या अब इस तन को भी खाओगे ।”

“मज की बार मुझे अच्छा होने दे । उस कन्हैया के बच्चे को जितना खाया जाऊँगा ।”

किशोरी ने छुछा से बूढ़े की देखा और वह बाहर चली गयी ।

**विद्रोह**

मैं विद्रोह हूँ । जब दोबारा अपनी ज़रमखीमा पर पहुँच जाता हूँ तब मेरा भाविर्भाव होता है ।

किशोरी में मेरा आविर्भाव हो गया । वह अब कुम्हारों, साफ़, प्रेमी कन्हैया को अपने घर बुलाती है और वह रात के सुने पहरे हैं उससे

भावुकतापूर्ण बातें करती है। उसका पति उसे डांटता है, पीटने की धमकी देता है, पड़ोसी लोगों को उकसाता है पर वह किसी की परवाह नहीं करती। उसने साफ-साफ कह दिया, "आपका भला इसी में है कि आप चुपचाप दो जून रोटियाँ खा लिया करे। आपकी मेरी कोई जोड़ी नहीं, व्यर्थ में आप जरा से समझोते की तिल का ताड़ बना देंगे।"

बूढ़ा उसकी बात को नहीं सुनता है। वह घोरगुल मचाता है। किशोरी तंग आकर कहती है, "भे कन्हैया को नहीं छोड़ सकती, वह मेरा असली जीवन है। और आप भी कान सोलकर सुन लीजिए कि पानी सिर तक न आने पाये, यदि आ गया तो मैं यहाँ से सवा के लिए चली जाऊँगी।"

"कैसे जायेगी ? मैं तोरा भोंटा पकड़कर बन्ध नहीं कर दूँगा।"

वह विचलित स्वर में जवाब देती है "भाप मैं इतनी ताकत आ जाती तो मुझे यह सब क्यों करना पड़ता। क्यों से आपसे समझौता करती आयी हूँ। अब नहीं सह्य जाता। यदि ऐसा ही जीवन है तो ऐसे जीवन को दुरन्त छोड़ देना चाहिए। लेकिन मुझे आपके बुढ़ापे पर तरस आता है। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे सुख से जीने दीजिए और अपने को भी। कम-से-कम मैं आपकी सेवा तो करती हूँ।"

"सेवा नहीं करेगी तो जायेगी कहाँ ? नकद कलशार दिए है।"

"मुझे नहीं, मेरे भाप को।"

इसी तरह गर्मा-गर्मी।

## एक रात

"तू तब लपटों को छोड़ेगी या नहीं?"

"नहीं।"

"भगव्दी तरह सोच लिया।"

"सोच लिया।" किशोरी के स्वर में हड़ता।

"मैं तेरी जान से लूँगा।"

“जे लीजिए अगर इतना दम हो तो ?” उसने लापरवाही से कहा और अपने काम में लग गयी ।

बूढ़ा ठीक हो गया । सचमुच एक दिन उसने किशोरी के सिर पर लकड़ी का प्रहार कर दिया ।

जैसे किशोरी की हृदय के समस्त क्षतियों को भूलकाया । उसने मुझे अपना लिया । आँखों से आँसू भरकर वह दूधे स्वर में बोली, “तुमने मुझे पीटा, मेरी रोयाओं का यह बदला दिया । जा, कम मैं तुम्हें छोड़कर उसके साथ चली जाऊँगी, तुम्हें जो करना है सो कर लो ।”

**छुरी ने साथ न दिया**

मैं छुरी हूँ । बोपहर की छूप में मेरी लपखपाती जीभ बहुत ही भयानक लगती है । मैं बूढ़े के हाथ में हूँ और बूढ़ा अपने काँपते हाथों से किसी का खून करने के लिए उसावला हो रहा है ।

किशोरी घर से गायब है । कन्हैया भी नहीं है । एकाएक एक घावमी यह लगर लाकर बूढ़े को वेता है कि किशोरी भीर कन्हैया बाजार से आ रहे हैं । बूढ़ा वहाँ से तूफान की गति से भागता है । उसके सिर पर खून सवार है । उसके हाथ में मैं तंबी हूँ । लोग बिसूक से भागते हुए बूढ़े को देख रहे हैं । वह बड़बड़ा रहा है । “मैं छिनाल की जान के जूगा, मैंने कलवार दिए हैं, मैं.....”

वह उन दोनों के पास गया । किशोरी कन्हैया से चिपट गयी । बूढ़े ने मुझे संभाला । मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं । उस मासूम पर चलने की मेरी इच्छा नहीं हुई ।

बूढ़े ने झुगा से होंठ काटते हुए कहा, “मैं मेरा खून पी जाऊँगा, रंडी !”

अचानक किशोरी संभली । उसने बूढ़े को चेतावनी दी, “होश की बात करो ।”

पर उसने प्रहार किया । किशोरी ने गुस्से में एक धक्का दिया । बूढ़ा तुरन्त जुड़क गया । मैं उसके पेट में इस तरह जुड़ गयी जिस तरह

वह ककड़ी हो। बूढ़ा तड़पकर कर वहीं मर गया।

### मैं कानून हूँ

मैं कानून हूँ। अन्धा और बहुरा। मेरे सच्चे साथी गवाह हैं। गवाहों के आधार पर मैंने किशोरी का पक्ष लिया और उसे शाहज्जत बरी कर दिया गया क्योंकि उसने अपने बूढ़े पति पर कोई चार नहीं किया था। उसने अस्तिम निर्णय भी विवशता के कारण किया वना उसने बूढ़े से बहुत समझौता करने की कोशिश की थी। वह आजाद है, आजाद।

### जिन्दगी

मैं जिन्दगी हूँ। माटी मेरा जन्म-स्थान है और माटी मेरा मरण-तीर्थ। मैं सदा नये रंग और नया जोष लेकर पैदा होती हूँ और कभी-कभी एक जन्म में कई रूप और कई रंग बदल लेती हूँ।

किशोरी एक बच्ची की माँ है और कन्हैया नये शहर में पान की बूकान करता है। शाम को जब वह थकासावा आता है तब किशोरी उसके बालों को सहलाती है और कन्हैया अपनी सारी थकान भूलकर उसके गालों का चुम्बन ले लेता है। मैं मुस्कुरा उठती हूँ। बराबर मुस्कुरा उठती हूँ। आकाश और धरा मुस्कुरा उठते हैं क्योंकि जिन्दगी की परिभाषा तभी ही सही होती है जब वह दुःखों के समुद्र में रहकर भी क्षण भर के लिए मुस्कुरा वे। वही मुस्कान जिन्दगी की अपनी है और वह जिन्दगी किशोरी के होंठों पर बिरका करती है अभी और आजकल।

## कोई सम्बन्ध नहीं

गर्मी की दोपहर। नीला आकाश छुप। सुनसान गली। हवा का कहीं नामोनिशान नहीं जैसे किसी जादूगरनी ने उसे अपने आँचल में बन्ध कर लिथा हो।

सेठ की बड़ी हनेली के मुख्य दरवाजे की पहली बेंटक में रूपसी बंठी थी। सीमेन्ट की दीवारें और सीमेन्ट का फर्श। रूपसी बार-बार पंखा झलती थी और हर दूसरे पल तड़पकर कहती थी, "इससे सर्दी का मौसम लास बर्षे अच्छा। ऐसी गर्मी इधर नहीं देखी।"

फिर वह उठी। उसने अपने लेंहने को झटका दिया। भोवनी को उतार फेंका और काँचसी को कमलस्थित करती हुई वह दरवाजे के बीचोंबीच खड़ी होकर सूनी गली को देखने लगी देखते-देखते वह फिर जड़बड़ानी, "मेरा बेटा किसल अभी तक नहीं आया। बहुत देर हो गयी है। रूप के निशान से लगता है कि जरूर दो बच्चे हैं। राम जाने उसने कुछ खाया-पिया है या नहीं? जैसे जैसे एक दरवा से बिना का और जाते-जाते हिसाबस भी दे दी थी कि जब भूख बने तब कुछ खा लेना।" और सहसा उसके चेहरे पर संघर्ष की रेखाएँ खड़ी और मिरासा की गहरी गर्त उसके संघर्षशील चेहरे पर छा गयी। वह कुछ विचलित-सी लगी और किसी आशंका से जबरनकर हनेली में स्थापित जानबोधी सुनुमान की भुक्ति के



समक्ष जा खड़ी हुई। उसने उन्हें हाथ जोड़े। शीश नवाया। प्रार्थना भरे स्वर में बोली, "हे प्रभु, मेरे लाडले की नौकरी जरूर लगा देना। मैं तीन माह तक तेरा व्रत रखूंगी।" वह अद्भुत भ्रूत हो गयी। उसके होंठ तड़पने लगे। प्राँखें सजल हो गयीं। वह पुनः पूर्ववत् जगह पर आकर खड़ी हो गयी.....बेटे की प्रतीक्षा में।

बाहिर वह उल्लास गयी। आकर बिछी हुई 'बोरी' पर बैठ गयी। तभी उसे कदमों की आहट सुनायी पड़ी। वह घुरगुर उठी। उसके निराश चेहरे पर आशा की चमक जाग उठी। होठों पर मुस्कान। उसने देखा... उसका लाडला आ रहा है। उसका सारा चेहरा पसीने की बूंदों से निचिप लग रहा है। कंधे पसीने से तर हो गये हैं। चेहरा गर्मी से लाल और प्राँखें धकी-धकी-सी हैं।

माँ को देखते ही किसन में नयी स्फूर्ति आ गयी। वह भागकर आया और माँ का भरपूर-स्पर्श करके बोला, "माँ-माँ, मेरी नौकरी लग गई है।"

"लग गयी।" माँ चौंक-सी पड़ी, और उसने अपने बेटे को आनिमल में भर लिया। वह विशालित स्वर में बोली, "आज मेरा मनोरथ और जीवन, दोनों सफल हो गये। बेटे। मैंने इस दिन के लिए भगीरथी सपस्या की थी। ताम में जली और प्राग पर बली। क्या-क्या कह नहीं उठाये? पर आज सब ठीक हो गया। सब कुछ मिल गया। अब तो मैं तेरा ब्याह रचाऊँगी। एक सोवरणी-मोवरणी बहू लाऊँगी। वो रिश्ते भाये भी हैं।"

"जब देखो.....ब्याह-ब्याह-ब्याह! परी माँ, बहू तो बाप में ले आना, पहले पेट-पूजा तो करा दे।"

"तू हाथ-मुँह धो, मैं अभी खाना परोसती हूँ।"

किसन खाना खाने लगा। दूसरा कौर जिने के साथ ही उसने कहा, "माँ, यह ले तेरा रुपया। भूख तो बढ़ी लगी थी पर भुख से पैसा खर्च नहीं हुआ।"

“क्यों?”

“इसलिए कि तू एक-एक पैसा बड़ी मेहनत-मजदूरी से कमाती है। माँ, बाप तेरे सब कुछ ख़र हो गये। बाप से मैं तुझे कुछ भी करने नहीं पूँगा। पर.....” वह कहता-कहता चुप हो गया।

“पर क्या ? तू चुप क्यों हो गया ?”

“पर माँ मेरी पौकरी यहाँ नहीं लगी है। इन्हें बीकानेर से जयपुर चलना पड़ेगा।”

“जयपुर। नहीं बेटा, नहीं। हम इस शहर को छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। यह अपना शहर है। यहाँ हमारे बुद्ध-बर्द को लोग अपनी की तरह बेठा लेते हैं। वहाँ पराये लोग होंगे। पराये हसारी पीर को नहीं जान पायेंगे। सब दुबारा बसाना पड़ेगा।”

“जब मौकरी करनी है सब वह सब करना ही पड़ेगा।”

रूपली एकदम उदास हो गयी। वह इस शहर को कैसे छोड़ सकती है ? इस शहर से उसका आत्मिक बन्धन है। अटूट मोह है। नहीं-नहीं, वह इस शहर को नहीं छोड़ सकती। वह किरान को पंखा झलती हुई बोली, “हम इस शहर को नहीं छोड़ सकते। बेटे ! इस शहर के बाध्य और सच्चे लोगों ने तेरी माँ को सब आश्रय दिया था जब तेरी माँ एकदम असहाय थी, उसका कोई नहीं था। कम-से-कम, मैं तो इस शहर को नहीं छोड़ सकती।”

“लेर, अभी इस बात को छोड़।” उसने बख़ू कर दिया। गमझे से हाथ पोंछता हुआ वह बोला, “माँ यमी के कारण मेरे सिर में दर्द होने लगा है इसलिए मैं मोता हूँ।”

वेकसे-वेकसे किरान खराब होने लगा। लोकित रूपली को धर्म की झपकी नहीं आयी। इस शहर को छोड़ने की चिन्ता उसे इनकारों विच्छिन्नों के दर्शन की पीड़ा देने लगी।

उसी रूपली को गली में फिर कदमों की घाहट सुनाई पड़ी।

गाहट के साथ लाठी की छक्-छक्।

“कौन आया होगा इस धूप में ।” उसने अपने आप से पूछा ।  
 माहट और नजदीक आ गयी साथ में लाठी की भी ठक्-ठक् ।  
 वह उठी । माहट और पास आ गयी । उसने बाहर झाँककर देखा ।  
 अप्रत्याशित कोई धीवार भड़कड़ाहट के साथ गिर पड़ी हो, ऐसा  
 धमाका हुआ रूपली के मन में । उसने एक बार उन दोनों आगन्तुकों को  
 फिर से देखा और पलक झपकते उसने गड़गड़ के साथ दरवाजा बन्द  
 कर लिया । उसकी साँस तेज हो गयी और हृदय में तूफान-सा मच गया ।  
 बाहर से दृढ़ती-कपिली आवाज आयी, “किबाड़ खोलो, बहू किपाड़  
 खोलो ।”

रूपली को महसूस हुआ कि उसका खून बहुत तेज चलने लगा है ।  
 यदि वह कुछ देर और जड़ी रही तो गिर पड़ेगी । अचेत हो जायेगी ।  
 खद-खद-खद कुंड़ी की आवाज ।

रूपली पथन वेग-सी भीतर चली गयी । जाकर वह इस तरह बैठी  
 मामो वह कोई चोर हो और उसे पकड़ने के लिए पुलिस आ गयी हो ।  
 क्षण भर का सझाटा बहुत दुस्सह हो गया और इस बीच रूपली ने यही  
 सोचा, “ये दोनों यहाँ कैसे पहुँच गये ?”

“बहू दरवाजा खोलो ।” पहले वाली आवाज और पड़ी कुंड़ी की  
 खद-खद । खद-खद बढ़ती गयी । गहरी नींद में मस्त किसन अचकचा  
 कर उठा । वह पसीने से भीग गया था । उसकी आँखें जाल भी और  
 बाल भस्त-व्यस्त । वह सपककर दरवाजा खोलने लगा । तभी रूपली  
 भागती हुई लपकी, “दरवाजा मत खोलो, दरवाजा मत खोलो ।” और  
 उसने किसन के “भोगल” खोलते हुए हाथों पर अपने हाथ रख दिये ।  
 वह बहुत धमराई हुई थी और एक अजीब भव उसके चेहरे पर, उसकी  
 फैलती आँखों में छा गया था ।

“क्यों”— किसन ने विस्मय से पूछा ।

“बस, तुम फाटक मत खोलो ।”

“लेकिन क्यों” उसने नाराजी के साथ अपने शब्दों पर जोर दिया ।

रूपली निश्चय ही गई। कुछ नहीं बोली यह। जड़ हो गयी।

“बोलती क्यों नहीं। मैं क्यों नहीं दरवाजा खोलूँ? क्या तुने कोई चोरी की या किसी का गला काटा है?”

रूपली संभवतः वहाँ से हट गयी। किसान ने किवाड़ खोल दिये। दो अपरचित व्यक्ति खड़े थे। एक लाठी के सहारे खड़ा बूढ़ा और दूसरा प्रौढ़ जिसके सारे बाल सन की तरह सफेद थे। उसकी गहरी झुर्रियाँ जो अभी बहुत ही गहरी हो गयी थी। वह बूढ़ा उसे देखते ही बोला, “बेटा क्या हम भीतर आ सकते हैं? बाहर बड़ी धूप है। ठफ। आकाश आग बरसा रहा है।”

“आइए।” वह दरवाजे से हटा गया। उसने जपक कर दो बोरियाँ भला भला बिछायीं। उन्हें बैठने का अनुरोध किया। कपड़े से सिलाई की हुई फालरदार दो पंखियाँ दो ओर ताड़ की बनी हुई थी। वे दोनों सुस्ताने लगे।

“वह भकान किसका है?” बूढ़े ने बड़े संवत रचर में पूछा। उसकी बूढ़ी अनुभवी आँखें किसान पर अभी हुई थीं।

किसन ने तुरन्त सोचा कि हो न हो यह दोनों कोई सड़की वाले हैं। ऐसे सड़की वाले जिसकी सड़की भाँ को आवर पसंद नहीं है वहाँ ऐसे प्रथम में लोग नहीं पृथ्वी।

उसने बड़े-बड़े ही कहा, “सैठ करतूरचन्द जी का।”

बूढ़ा फिर पंजा आसने लगा। प्रौढ़ व्यक्ति बिलकुल खामोश था। जैसे परधर की प्रतिमा। कभी कभी वह कमखियों से उसे देख लेता था। उसके देखने की अभिमा से दण्ड आन पड़ जान पड़ रहा था कि हो न हो यह सड़की का नाम है और वह बूढ़ा ‘सायब उसका दादा।...पर भाँ इन दोनों को देखकर इतना चकरा क्यों गयीं थीं? उसने इन आंगणुकी का द्वार बंद करके अपमान क्यों किया? प्रथम पर प्रथम उसके सस्तिज में छाते गये। कुछ दण्ड निचारों की हलचल में कुत्तर गये।

“पानी पिलाओगे?” बूढ़े ने फिर बीच में कहा।

“जरूर जरूर।” संकोच से नीची गर्दन करके किशन भटकी से पानी भरने लगा। दो गिलास पानी पीने के बाद बूढ़ा बहुत आश्वस्त दिखाई पड़ा। बोला, “तेरी माँ कहाँ है?”

“भीतर।”

“उसे बाहर बुला दो तो।”

किशन माँ के पास गया। वापस आ कर बोला, “माँ आपसे कोई बात करना नहीं चाहती। वह कहती है कि आप लोग मुझ पर दवा करके यहाँ से चले जायें। पुराने नाते रिश्तों को भूल जाइए। सब कुछ कभी का खत्म हो गया था।”

बूढ़ा एकदम हाव हिलाकर बोला, “नहीं, नहीं, कुछ भी खत्म नहीं हुआ। कुछ भी नहीं टूटा। सब टूट सकते हैं पर खून का रिश्ता नहीं टूट सकता। वह जन्म-जन्मान्तर रहता है। पीढ़ी दर पीढ़ी रहता है।”

माँ एकदम उनके पास आ गयी। किशन उरो देखकर भीतबका रह गया। इस बार वह बहुत उत्तेजित लग रही थी। बोली, “किशन तू इन्हें कह दे कि हमारा आप से कोई रिश्ता नहीं है।”

“बहू!” बूढ़ा सकुच सा गया।

अब कपली साज शर्म हटाकर बूढ़े के बिल्कुल सामने थी। बूढ़ा उरो देखकर गिड़गिड़ा उठा, “ऐसा न कहो बहू, क्या तू हमें माफ नहीं कर सकती। हमसे बड़ी भूल हो गयी थी।”

“भूल। भूल नहीं, आपकी दुःखा थी। जोश था। आप चाहते थे कि इस बहू को छोड़कर हम एक और बहू ले आयेंगे और भवकी बार लय की हुई बहूज की सारी रकम पहले ले लेंगे।... और आपका यह गाय सा सीधा सादा बैटा जो आज एक आर्थिक हन्सरान सा जगता है उस दिन कितना स्वार्थी और नीच बन गया था जिस दिन उसने आपके सामने मुझ पर यह आरोप लगाया था कि वह क्षिणिक है। वह चरित्रहीन है।”

किशन सारी स्थिति तुरन्त समझ गया। ये दोनों आगन्तुक फौन में, अब उसके समक्ष वर्ण की तरह साफ थे। उसने उन दोनों को एक

बार दरा तरह घूर कर देखा गानो वे दोनों बैठे-बैठे बदल गये हो ।

बूढ़े ने किसन को सम्बोधित करके कहा, "मैं तेरा दादा हूँ बेटा और यह तेरा बाप है ? क्या एक मलती को भी सुचार न जाय ?"

किसन विमूढ हो गया । उसे लगा कि उसके अन्तः की उमड़ती हुई भावनाओं ने उसका गला पकड़ लिया है । वह कुछ कहना चाहता है पर कह नहीं सकता । क्या सचमुच यह इसका दादा और यह इसका बाप है ? प्रश्न पर प्रश्न उसके मन को झकझोरने लगे ।

रूपसी बीच में ही बोल पड़ी, "यह नादान आपको इसनी भारी बात का उत्तर नहीं दे सकता । मैं उत्तर देती हूँ कि कुछ भूलें ऐसी होती है । जो अक्षम होती है । आगकी इस अक्षम भूल का कोई प्रायश्चित्त नहीं । यह भूल जिसने मेरे पिछले बीस बरसों को बेदर्दी से निगला है । जिसने मेरे सोने के तन और उमंगों भरे मन को बीमर की तरह पिंजर करके मोम की तरह गलाया है, उस भूल को मैं किस आधार पर माफ कर सकती हूँ । अब मैं भूल को एक ही शर्त पर सुचार सकती हूँ अगर आप मेरे पिछले बीस बरस गुन्ने वापस लौटा दें । क्या लौटा सकते हैं आप ?" रूपसी की भाँखें डबडबा कर भर आयी ।

बूढ़ा गुँगा हो गया । प्रौढ़ व्यक्ति अपराधी की तरह सिर झुकाए निरपेक्ष बैठा रहा । किसन के मन में केवल प्रश्न दुरी तरह छा रहे थे ।

रूपसी ने अपना मुँह ओढ़नी के पल्ल में छुपा लिया । असीम अछोर वेदना से उसकी छाती फट पड़ी । वह रोती रही । सिसकती रही ।

ठहरी हुई मौन हुआ अब रूपसी की सिसकियों पर तैरने लगी थी ।

झूटी पर टेंगा हुआ गमछा धीरे-धीरे हिला ।

बूढ़े ने विनीत-विगमिल स्वर में कहा, "हम लड़े पायी हैं । घर की लक्ष्मी को निकाल कर हमने कभी भी सच्चा सुख नहीं पाया । सभी कोई न कोई विपत्ति हम पर संहरावी रही । और आज हमारे पास क्या नहीं है ? सभी कुछ है । पर इस हरे भरे घर में एक पुत्र नहीं है । पुत्र बिना जीवन निष्फल होता है । उसके बिना आदमी का शोक-परलोक दोनों निरर्थक

जाते हैं।... किसन की माँ ! लामू की दूरारी बहू लम्बी बीमारी के बाद एक बरस पहले चल बसी है। बहू, घर चला हम तेरे पाँव पकते हैं। तू जो हमें दण्ड देगी, हम उसे भोगेंगे।”

‘मैं आपके साथ नहीं चलूँगी। मेरा और आपका सम्बन्ध उसी दिन खत्म हो गया जब आप एक हजार रुपये के पीछे मेरे सुहाग में भाग लगाकर चले आये थे और बाद में आपके बेटे ने मेरी कौल को कर्मकित बता कर शेष सम्बन्धों को भी खत्म कर दिया था।”

‘जो हो गया, उसके लिए तू हमें जो चाहे बंड दे पर अब तुझे घर चलना ही पड़ेगा।” और बूढ़ा पश्चात्ताप से गर्दन हिलाकर बोला, ‘‘होनहार सबसे बड़ी होती है। होनी के सामने बन्दे की नहीं चलती। बन्दा उसके सामने निर्बल-मिसपाय है। वह कुछ नहीं कर सकता। होनी राजा राम को बनवासभोजा और सत्यवादी हरिश्चन्द्र को बाग्जाल बनाया थोड़ी देर कोई नहीं बोला।

एक असंख्य मौन छाया रहा।

रूपानी अपने आपको पूर्ण स्वस्थ करने की चेष्टा कर रही थी। किसन भी कुछ कहने के लिए अपने आपको प्रेरित कर रहा था, लेकिन वह कुछ कह नहीं पाया। वह सोच रहा था कि माँ ने उसे कभी भी यह सब नहीं बताया। वह सदा यह बताती आयी है कि उसका पति कहीं परदेश चला गया था और वहाँ से वह वापस कभी नहीं लौटा। उसने यह भी बताया था कि उसका समुदाय में कोई भी नहीं है। यह सब माँ ने क्यों छुपाया ? आज उसके सामने माँ एक झूठ बनकर खड़ी है। उसने माँ की ओर देखा। माँ का मुख कुछ की नदनाओं से घिरा था। ऐसी वयनीय माँ को वह कुछ भी नहीं कह पायेगा।

पहली बार रूपानी के पति लामू ने अपना मौन भंग किया। उसने फनली से एक बार रूपानी को देखा और बाद में वह नज़र झुकाए हुए यंत्रवत बोली, ‘‘मैं भी तुमसे समझा मिलता हूँ। कर्मकर्मने तुम पर लगामा था इसलिए तुम बंड भी मुझे दो। पर मेरे बाप को निराश मत

करो। अब तुम घर चलो। मेरे बाप के बुढ़ापे पर दया करो। यह तुम्हारे द्वारे धाया है।”

रूपली के मानस-पटल पर अतीत तैर गया।

उसे याद आया—

जगभग बीस बरस पहले।

वह बुरिहून बनी है। उसके हाथ सुहान की मेंदरी से रचे हैं। वह अपने बूढ़े को जिज्ञासा भरी नजर से चुक-चुक कर देख रही है। वह सोचती है—‘मेरा बूढ़ा साक्यास ‘ईसर’ है। गवर (गसगरी) का के भरतार (पति) ईसर जैसा।’ वह बहुत प्रसन्न है। उसके पाँव खुशी के भारे जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं। उसे बार-बार महसूस होता है जैसे उसके पंख जग गये हैं और वह नीले-नीले आकाश में सोन-चिंदिया की तरह फुदक-फुदक कर उड़ रही है। रात में आँवरे पड़ते हैं। हथलेवा का जाल सुरंग निशान बूढ़न के मन को मोहने लगता है। बूढ़न जवान है अतः सुकलाबा (गोपा) भी साथ होने का निश्चय हो गया है। टीके की रात—सुहगरात। पूरा चाँव आकाश के बीचों-बीच अपनी सम्पूर्ण आभा में चमक रहा था। वह लहने, ओढ़ने और काँचली में गडरी बनी बैठी है। उसका सलोना पिया साधू जाता है। किसी साथ उस दिन उसके दिल में एक साथ जाग पड़ती है और जब साधू शहर-उधर की बातों के बाध उसे छूटा है वह पंखर की बग जाती है।

सुबह ही रंग नवरंग हो जाता है।

उसके समुद्र और बाप में ‘टीके’ के वायले (दहेज) की रकम को लेकर झगड़ा हो जाता है।

समुद्र गणेशाराम कहता है, “असधी जी, भापको एक हजार रुपये देने ही पड़ेंगे। अब भाप अपने वायले से मुकर रहे हैं।”

“मैंने भापसे कोई वायदा नहीं किया।” उसका बाप किसना मुकर जाता है।

“इतना शफेर झूठ ?”



“भूठ आप बोलते हैं।”

वातावरण देखते-देखते अहरीला हो जाता है। लाठियाँ निकल आती हैं—दोनों ओर से। भयभीत हिरनी की तरह हो जाती है रूपली। ईश्वर से भारदासना करती है। प्रसाद बोलती है मंगल-शुभ के लिए।

उराका समुर लाठी जमीन पर जोर से ठोक कर कहता है, “बारात बिना खाये-पीये ही लौट जायेगी।”

“वह इस तरह नहीं जा सकती।”

वह फफक-फफक रो पड़ती है। वह बहुत निरभारी है। घब घया होगा।...हुआ वही जो सवा होता आया है। बारात वापस बिना मुकलावा किये लौट जाती है। हजार सापें सग में बराए हुए रूपली पायल मोरनी की तरह आती हुई बारात की धूल को देखने लगती है। थोड़ी देर में वहाँ बीरानगी छा जाती है। शेष चिन्त स्मृतियों के रूप जहाँ-तहाँ पड़े रहते हैं।

रूपली भीतर के कमरे में आकर रोती है। माँ उसे डाँटती है, “किसको रोती है फूटी आगिन। कैसे फूटे भाग लेकर मेरे पेट से जन्मी है। तेरे कारण उनकी मूर्ख का चावल चना गया। इज्जत धूल में मिल गयी।”

कुछ दिन बीत जाते हैं।

एकाएक लाली चक्कर खाकर गिर जाती है। सरे घन्ट की दास आने लगती है। एक नया आलस उसके अंग-अंग में समा जाता है।

घर में एक नयी हलचल उत्पन्न हो जाती है।

बाप गजबूँर हो जाता है। उसकी समुराल सभाकार भेजता है। अपनी सभारी को पीड़ित करने की मनसा रखनेवाला उसका समुर साफ इन्कार कर जाता है। बाप अपनी कुजटा बेटी को पीटता है। बेवारी गाय रूपली कसाईयों के हाथों पड़ जाती है।...गाँव उसकी हँसी उड़ाला है। ताने बैठा है। धुरिये-धुरिये करता है। आखिर रूपली तंग आ

जाती है। क्या करे ? गाँव में न डाक घर और न वह पढी-लिखी। पति से मिलाने का कोई साधन नहीं। तंग आ जाती है बिन्दगी से। मरने चल पड़ती है।

कूबा ! नीरव और शांत। यके माँदे बँल दिनभर की कठोर मेहनत के बाद सोये पड़े हैं। नह उन्हें देखती है। डब्खा होती है—मर जाऊँ। मर जाऊँ ?...लेकिन सहसा वह मरने का विचार छोड़ देती है। वह नहीं मरेगी। वह पापिन नहीं फिर वह क्यों डरे मरे ? और वह निरुद्देश्य यात्री की तरह चल पड़ती है—अनजान रास्ते के अपरिचित सफर पर।

शहर आ जाती है। अपने नारीत्व-सतीत्व की रक्षा करती हुई वह उरी की जाति की एक बुढ़िया 'धन्ना' के पास परवरिश पाती है। उसे भी वह सही बात नहीं बताती है। केवल विपत्ता की भारी बताती है। आज भस्मा धूस ससार में नहीं है पर कृपणी उसकी बड़ी कृतज्ञ है। उसे देवी की तरह गानती और पूजती है। शहर में वह आटा पीसती है, मिर्च-ममाले पीमती है। जूठे बर्तन मलती है। हवेलियों में जाव-बुझारी करती है और इन सबके बावजूब वह सदा अपने प्रीतम के लिए रोती है। और एक दिन वह यह मनमूस खबर पाती है कि उसके प्राणु-भारे ने दूसरा ब्याह कर लिया है।

आधा अन्तहीन प्यास की तरह ही जाती है।

समय सूखे पत्तों की तरह उड़ता रहता है।

यह किसल को जन्म देती है। पालती-पोसती है। पढ़ाती है और आज वह सरकारी नौकरी में भी लग गया है।

इन बरसों में उसने न अच्छा पढ़ना है और न अच्छा खाया है। परदेही पिया की गोरही (पत्नी) की तरह वह छुर-छुर पिंजर हो गई है। उसका मन फिर की आग से जल गया है।

और आज उसका समुद्र और पति उसे लेने भाये हैं।

समुद्र में ध्यानमग्न रूपों की किमोझा, "मेरे बुझापे की लोच नहीं

रखोगी बह ! पच्चीस बीघा जमीन है । सकान है । और किसन के बहुत अच्छे-अच्छे रिस्ते आ रहे हैं । एक आदमी बीस हजार रुपये देने को तैयार है । बहू, चलो, अपने घर !” बूढ़े की आँखों में लोभ नाच उठा ।

“मैं नहीं चर्जूंगी ।”

इस बार बूढ़ा कुछ कठोर हो गया उसकी आँखें गुस्सीली बिल्ली की तरह चमक उठीं । वह स्वर को लम्बा करता हुआ बोला, “बहू, जग हँसाई अच्छी नहीं होगी । भूल का प्रायश्चित्त होता ही है ।” और बूढ़ा बड़ी नाटकीयता से आँखों में आँसू लाकर बोला, “कसूर तेरे पति का है । वह ही झूठ बोला था । यदि वह मुझे पहले ही बता देता तो शायद इतनी समस्या ही लड़ी नहीं होती ?”

कपली अपने लोभी और दुष्ट ससुर की चालवाजी समझ गई । उसे अच्छी तरह मालूम था कि उसका ससुर यह सब नाटक खेल रहा है । अब जब उसके अपने बच्चे को रात-दिन मेहनत करके, चक्की पीसकर, भूखी रहकर उसे बड़ा किया और पढ़ाया...लिखाया तो यह अपनापन जगाने लगा । कितना दुष्ट है । घृणा की लहरें उसके गस्तिग में तीव्र वेग से छाने लगी और उसने रपट शब्दों में कहा.....“मैंने कहा न, कि आपसे मेरा कोई रिश्ता नहीं है । आज बीस हजार रुपये का लोभ आपको यहाँ तक खींच लाया है ।”

“छिः छिः रुपयों का लोभ ! बहू इतनी ओछी बात क्यों करती हो ?”

“ओछी गा सच्ची ? ससुरजी, आपने सुना होगा कि किसन बड़ा हो गया है । बी० ए० पढ़ गया है । नौकरी भी लगने वाली है, लोग कहते होंगे कि लड़का बड़ा धोनहार, तभी आप ...नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । मैं आपके साथ नहीं चर्जूंगी और न मेरा बेटा ही जायेगा ।”

बूढ़े ने बड़ी धाधा से अपने पोते की ओर देखा । किसन से उसकी नजरें और दूर और उसने अपनी दृष्टि इस तरह झुकायी जिस तरह

उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा हो। लेकिन उसे यह जरा भी भ्रम न लग रहा था कि ये लोग उसकी माँ पर दबाव दें। वह चुपचाप बैठा हुआ इन दोनों की बातचीत सुनता रहा। देखते-देखते उसकी माँ गर्म हो गयी और उसका दावा भी धुँआ-फुँआ हो उठा। बात बहुत ही जल्दरीले वातावरण की सज्जना के साथ समाप्त हुई।

×

×

×

शाम की ही रूपली ने कहा....."किसन, हम यह सहर छोड़ेंगे।"  
"क्यों माँ?"

"इसलिए कि तुम्हारा दादा बहुत लोभी है। दुष्ट भी है। दया का पाप भी नहीं है। हालांकि मुझे उसके दुहाये पर रहम आता है लेकिन बेढा में सोचती हूँ कि इस पर दया करना प्रभु को नाराज करना है। आज चौधरी बंशीधर का घन उन्हें फिर हमारी ओर खींच लाया है। इससे पहले वे लोभी तुम्हें एक कुलटा की ओलाध कहते थे। ऐसे आदमी को अपने पापों का ढण्ड मिलना ही चाहिए। माँ अस्ताह से बोली, "और हाँ, अब वे यह भी इन्कार नहीं कर सकते कि तू उनका पोता नहीं है। और मैं तुम्हें एक ऐसे अच्छे और बड़े आदमी के रूप में देखना चाहती हूँ जो इन गिरे हुए लोगों के सामने एक आदर्श हो। इसलिए आओ हम यहाँ से चलें। अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। जहाँ रोटी, बही, अपना घर। हमारी हुर चीज नहीं और अपनी होगी।"

किसन ने देखा.....माँ का चेहरा एक पवित्र आलोक से दीप्त हो गया है, उस आलोक में एक नारी का शीज और अहम् दोनों हैं।

॥ समाप्त ॥